THE BOOK WAS DRENCHED

आध्यात्मिकी

द्विवेदी



आध्यात्मिकी



लेखक
महावीरप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९२७

प्रथम संस्करण] [मूल्य १)

Published by
K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.

निवेदन

कुछ समय से, हिन्दी में, मौलिक रचना का महत्त्व ख़ूब गाया जा रहा है। ऐसी रचनाओं की कमी ही नहीं, प्रायः अभाव ही सा बताया जा रहा है और ज़ोर दिया जा रहा है कि सामर्थ्य रखनेवाले लेखकों को मौलिक ही पुस्तकों की रचना करनी चाहिए। इस पर प्रश्न हो सकता है कि "मौलिक" विशेषण का अर्थ क्या है। कोशकार कहते हैं कि जिस वस्तु का मूल अर्थात् जड़ उसी में हो उसी को मौलिक कहते हैं। मतलब यह कि जिस पुस्तक में और कहीं से कुछ न लिया गया हो वही मौलिक है।

यह तो "मौलिक" शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ हुआ। इसी अर्थ को शायद ध्यान में रखकर हिन्दी-साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली प्रतिष्ठित संस्थायें मौलिक पुस्तकों के कर्ताओं को बड़े-बड़े पारितोषिक देने की घोषणायें करती हैं। परन्तु जब मौलिक मानी गई पुस्तकें जाँच करनेवाले साहित्यशास्त्रियों के सामने आती हैं तब वे यदा-कदा औरों की लिखी हुई मूल पुस्तकों के भाष्यों और टीकाओं को भी मौलिक समझकर भाष्यकारों और टीकाकारों को उपहार का पात्र निश्चित कर देते हैं। इससे सूचित होता है कि कोशकारों का किया हुआ,

मौलिक शब्द का अर्थ परीक्षक पण्डितों को मान्य नहीं। इससे यह भी सूचित होता है कि औरों के कथन को अपनी भाषा में अच्छी तरह समझा देनेवाले या उसकी व्याख्या करनेवाले लेखक भी थोड़ा-बहुत महत्त्व ज़रूर रखते हैं।

संसार में ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। मनुष्यों पर अपने पूर्ववर्त्ती पुरुषों के ज्ञानोपदेश का असर पड़े बिना नहीं रहता। यही हाल लेखकों का भी है। किसी विषय पर कुछ लिखनेवाले लेखक के हृदय में उस विषय की दृष्ट-पूर्व पुस्तकों के भाव ज़रूर ही जागृत हो उठते हैं। कालिदास या भारवि आदि महाकवियों के काव्यों का परिशीलन जिसने किया है वह यदि उन्हीं काव्यों में वर्णित विषयों पर कविता लिखेगा तो सम्भव नहीं कि उसकी रचना में उनके भावों की कुछ न कुछ छाया न आ जाय। इस दशा में सर्वतोभाव से मौलिक रचना करना बड़ा ही दुस्तर काम है। सर जगदीश-चन्द्र वसु ने कितने ही नये-नये और अद्भुत-अद्भुत आविष्कार किये हैं और उनका विवेचन भी बड़े-बड़े ग्रन्थों में किया है। आप उनकी पुस्तकों को पढ़िए। आप देखेंगे कि उन्होंने अपने पूर्ववर्ती विज्ञानवेत्ताओं के द्वारा सञ्चित ज्ञान से कितना लाभ उठाया है। यह कोई नई बात नहीं। इस तरह की परिपाटी तो परम्परा ही से चली आ रही है। सभी लेखक—सभी ग्रन्थकार—अपने पूर्ववर्त्ती पण्डितों के ज्ञान से लाभ उठाते चले आ रहे हैं। और यह क्रम सतत जारी ही रहेगा।

यदि ऐसा न होता तो मनुष्य-समुदाय आज ज्ञानार्जन की जिस सोपान-पंक्ति पर पहुँचा है उस पर कभी न पहुँचता।

अतएव विवेचक जनों को देखना चाहिए कि जो पुस्तक उनके हाथ में है, या जिसकी वे समालोचना करने जा रहे हैं, उसमें ज्ञानवर्द्धन की कुछ सामग्री है या नहीं। अर्थात् जिन लोगों के लिए वह लिखी गई है उनके लिए वह सामग्री उससे अच्छे रूप में अन्यत्र सुलभ है या नहीं। यदि है, और हाथ में ली हुई पुस्तक में कुछ भी, किसी तरह की, विशेषता नहीं तो उसे महत्त्वहीन समझना चाहिए। यदि यह बात नहीं और यदि उस पुस्तक से उसके विषय के किसी अंश की कमी दूर होती है तो वह अवश्य ही अवलोकनीय है।

प्रस्तुत पुस्तक को आप इसी कसौटी पर कसकर देखिए। आप देखेंगे कि इसमें मेरे जिन लेखों का संग्रह है वे कई भाषाओं के भिन्न भिन्न ग्रन्थों की सहायता से लिखे गये हैं। विचार-परम्परा और तत्त्वनिर्णय दूसरों का है; उनके प्रकाशन की प्रणाली और भाषा मात्र इस निवेदनकर्त्ता की है। सृष्टि-रचना, जन्म-मरण और आत्मा-परमात्मा से सम्बन्ध रखनेवाली बातों का विचार अनादि काल से चला आता है। अब भी चला जा रहा है और आगे भी चला जायगा। ये विषय बड़े गहन हैं। इनसे जानकारी प्राप्त करना और ज्ञात ज्ञान के आगे बढ़ना सबका काम नहीं। तथापि "नभः पतन्त्यात्म-समं पतत्रिणः"—इस न्याय के अनुसार अल्पज्ञ मनुष्यों को

भी चाहिए कि वे, अपनी शक्ति के अनुसार, जन्म-मरण आदि की समस्याओं का कुछ ज्ञान प्राप्त करना अपना परम धर्म्म समझें। यही समझकर, इन विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले अपने लेखों को मैंने इस पुस्तकरूपिणी मञ्जूषा में रख दिया है। जिन बातों का विवेचन इसमें है वे यदि इसी रूप में अन्यत्र न पाई जायँ तो समझना चाहिए कि इनके इस संग्रह का प्रयत्न व्यर्थ नहीं।

जो लेख जिस समय लिखा गया है उसका निर्देश उस लेख के नीचे कर दिया गया है। लेखों का क्रम लिखे जाने के क्रम के अनुसार नहीं रक्खा गया। जिन लेखों का विषय अपने अगले-पिछले लेखों से मेल खाता है वे पास-पास रख दिये गये हैं। यथा, आत्मा के अनन्तर परमात्मा। आशा है, इसी क्रम से पढ़ने में पाठकों को सुभीता होगा। कहने की आवश्यकता नहीं, ये सब लेख "सरस्वती" में प्रकाशित हो चुके हैं और उसी से उद्धृत किये गये हैं। केवल नम्बर १० के लेख का परवर्ती अंश पीछे से लिखकर उसका विस्तार बढ़ा दिया गया है।

दौलतपुर, रायबरेली
१९ आक्टोबर १९२६

महावीरप्रसाद द्विवेदी

विषय-सूची

आध्यात्मिकी

१—आत्मा

आत्मा का लक्षण तर्कसंग्रह में इस प्रकार लिखा है—

ज्ञानाधिकरणमात्मा

अर्थात् जो ज्ञान का आधार है उसे आत्मा कहते हैं। वह आत्मा दो प्रकार का है। एक परमात्मा, दूसरा जीवात्मा। जीवात्मा प्रति शरीर में भिन्न भिन्न है, व्यापक है और नित्य है। परमात्मा सर्वज्ञ है और एक ही है। परमात्मा अर्थात् परमेश्वर का लक्षण पातञ्जल योगसूत्रों में विशेष प्रकार से निर्दिष्ट है। अतः उसे हम, यहाँ पर, उद्धृत करते हैं—

क्लेशकर्म्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।
तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्।

प्रथमपाद, सूत्र २४—२५।८

अर्थात् क्लेश, कर्म्म, कर्म्म के फल और संस्कारों का सम्बन्ध जिसमें नहीं वह जीव से भिन्न ईश्वर है। उस परमेश्वर में ज्ञान का निरतिशय बीज है। इन सूत्रों पर व्यासजी ने जो

भाष्य किया है उसमें लिखा है कि अविद्यादि को क्लेश, पाप-पुण्य को कर्म्म, कर्म्म के फल को विपाक और फलानुसार वासना को आशय कहते हैं। जैसे संग्राम में जय अथवा पराजय योद्धाओं में होता है, परन्तु आरोपित राजा में किया जाता है, वैसे ही आशय यद्यपि मन में उत्पन्न होते हैं, तथापि जीव में आरोपित किये जाते हैं; क्योंकि जीव ही उनके फल का भोक्ता है। एतादृश क्लेशादिकों से जो सम्बन्ध नहीं रखता वह जीव से पृथक् परमेश्वर है। ज्ञानात्मकता के विषय में व्यासजी कहते हैं कि भूत, भविष्य और वर्त्तमानकालिक ज्ञान यद्यपि अतीन्द्रिय है, तथापि प्राणिमात्र उसको मन से अवश्यमेव ग्रहण करते हैं; चाहे स्वल्प, चाहे अधिक। यही ज्ञान प्रवर्द्धित होकर जिसमें सीमा की पराकाष्ठा को पहुँच जाय वही ज्ञानमय सर्वज्ञ ईश्वर है।

इस निबन्ध में हम जीवात्मा ही के विषय में लिखना चाहते हैं, परमात्मा के विषय में नहीं। इत उत्तर जीवात्मा को हम आत्मा के नाम से उल्लेख करेंगे।

हमारे प्राचीन दार्शनिक ऋषियों ने आत्मा को द्रव्य माना है। वैशेषिक-सूत्रों में नव द्रव्य परिगणित किये गये हैं; यथा, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन—

पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं कालोदिगात्मा मन इति द्रव्याणि।

अ० १, आ० १, सू० ५

जिसमें क्रिया और गुण विद्यमान हैं उसे द्रव्य कहते हैं। परन्तु हमारे परमोन्नतिशील अँगरेज़ लोगों की धर्म्मपुस्तक के अनुसार आत्मा श्वासोच्छ्वासवत् एक प्रकार का वायु* मात्र है। उसके स्थायित्व का कोई ठिकाना नहीं। जन्म के समय वह वायु नासिका द्वारा शरीर में प्रवेश करता है और मरण के समय उसी प्रकार किसी छिद्र से बहिर्गत होकर वायुमण्डल में मिल जाता है।

चार्ल्स ब्राडला इत्यादि जो घोर निरीश्वरवादी हो गये हैं उनके मत में आत्मा कोई वस्तु नहीं। अतएव वह कोई पृथक् द्रव्य नहीं माना जा सकता। उनके मत में† प्राणप्रद, जलप्रद, वातप्रद, तथा कोयला जिसके अन्तर्गत रहता है—एतादृश रसायन-शास्त्रोक्त चार प्रकार के वायु के संयोग ही से मनुष्य में चेतनाशक्ति उत्पन्न होती है और इन्हीं के मिश्रण में व्याघात होने से वह जाती रहती है। परन्तु डाक्तर निकलसन ने पश्वादि‡ प्राणिसम्बन्धी विद्याविषयक अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि उन्होंने एक ऐसा छोटा प्राणी देखा है जिसका

---

* And the Lord God formed the man of the dust of the ground and breathed into his nostrils the breath of life, and man became a living soul. Genises 11-7.

† Oxygen, Hydrogen, Nitrogen, and Carbon.

‡ Manual of Zoology, 6th Edition, page 7.

आकार चेतनोत्पादक* रस से कुछ ही बड़ा होता है और यद्यपि उसके शरीर में पाचन-क्रिया-कारी कोई अवयव नहीं होते, तथापि उसके भक्ष्य का पाक उतनी ही सुकरता से होता है जितनी सुकरता से सब अवयवों से युक्त अन्य बड़े-बड़े प्राणियों का होता है। डाक्तर निकलसन के अनुसार यह कहना ठीक नहीं कि शरीर की रचना और आवश्यक अवयवों की घटना सामान्य शारीरिक नियमों से होने ही के कारण पूर्व पदार्थों के मेल से चेतनोत्पादक रस उत्पन्न होता है और प्राणियों को जीवित रखता है। क्योंकि आमाशय, हृत्प्रदेश और श्वासो-च्छ्वासोपयोगी नासिकादि अवयवों के न होने पर भी यह रस स्वयमेव एकत्र हुआ देखा गया है और केवल जीवित दशा ही में नहीं, किन्तु मरणानन्तर भी यह उसी दशा में पाया जाता है।

इससे यह व्यक्त होता है कि वह रस, जिसे ये लोग चेतना-जनक कहते हैं, यथार्थ में प्राणप्रद नहीं है; क्योंकि प्राणोत्क्रमण के अनन्तर भी उसे देखकर यही बोध होता है कि उसमें किसी वस्तु की न्यूनता अवश्य हो जाती है, जिसके कारण उस रस के स्थित रहते भी शरीर निश्चेष्ट हो जाता है और प्राणी पञ्चत्व को प्राप्त हो जाता है। उस वस्तु को ये विज्ञानशिरोमणि अपने विज्ञान द्वारा कब जान सकेंगे, यह कौन कह सकता है। परन्तु, हाँ, हम अपने परमपूज्य ऋषियों के जाज्वल्यमान वैज्ञा-

* Protoplasm.

निक सिद्धान्तों के प्रताप से उस अज्ञात वस्तु को सहस्रश: वर्षों से "आत्मा" के नाम से अभिहित कर रहे हैं।

फिर, क्या आत्मा के अस्तित्व की साक्षी निरीश्वरवादी पाश्चात्यों ही के देशवासी विद्वान् नहीं देते ? शारीरिक शास्त्र के तत्वों की खोज में जिन्होंने निरतिशय परिश्रम किया है उन प्रतिष्ठित विद्वानों के सिद्धान्तानुसार प्राणिमात्र के शरीर में एक ऐसी अद्भुत शक्ति है जो स्वभाव ही से अपने को रक्षित रखने में तत्पर रहती है। वैद्यकविद्या के पारदर्शी डाक्तर भी इसकी पुष्टि करते हैं और कहते हैं कि जीवधारियों में एक ऐसी रोगहारक शक्ति है जो रोगियों को नीरोग करके उन्हें उनकी पूर्व स्थिति को पहुँचाने में सदैव प्रस्तुत रहती है और उसी के कारण सारे रोग नाश को प्राप्त होते हैं; औषधोपचार केवल गौण साधन समझना चाहिए। यह कथन सर्वतोभाव से सत्य जान पड़ता है, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो भूमण्डल के समस्त अवाक् पशु औषधोपचार के बिना किसी प्रकार रोग-मुक्त न होते और निरुपाय होकर क्षुद्रातिक्षुद्र रोगों के निवारणार्थ हम लोगों को उन्हें भी अनेकानेक कल्क, क्वाथ, वटिका, रसादि सेवन कराना पड़ते। इस रोगहारक स्वयंभूशक्ति को डाक्तर लोग अपने-अपने बुद्धि-वैभवानुसार चित्र-विचित्र नाम रखते हैं, परन्तु हम लोग उसे वही द्विवर्णात्मक "आत्मा" कहकर पुकारते हैं।

आत्मा में क्रिया और गुण होने के कारण आर्यावर्त के दर्शनशास्त्र-वेत्ताओं ने उसे द्रव्य माना है और लिखा है—

एष हि द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मन्ता, बोद्धा, कर्त्ता, विज्ञानात्मा पुरुषः ।

प्रश्नोपनिषत्

अर्थात् ज्ञानमय आत्मा ही को पुरुष कहते हैं। वह आत्मा ही है जो देखता है, स्पर्श करता है, सुनता है, घ्राण लेता है, आस्वादन करता है, मनन करता है, जानता है, और (समस्त कार्य्य-कलाप) करता है। परन्तु ज्ञान-निष्ठ द्रव्य-लक्षण-लक्षित आत्मा को कोई-कोई अध्यात्म-विद्या-विशारद पाश्चात्य विद्वान् नहीं मानते; और यदि मानते भी हैं तो उसे निराकार एवं कल्पित और अतात्विक मानते हैं। इस प्रकार का मानना न मानने ही के बराबर है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियों के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता; तथापि उसे चेतनाशक्तियुक्त तत्व मानना ही पड़ता है।

जिस प्रकार दर्पण तथा अन्य साकार भौतिक पदार्थों का संयोग होने से दर्पण में उन पदार्थों का प्रतिबिम्ब देख पड़ने लगता है; अथवा जैसे मोम के पत्र के ऊपर शिलालेख के अक्षर तद्वत् अंकित हो जाते हैं, वैसे ही आत्मा में सारे भौतिक पदार्थों का ज्ञानात्मक चित्र चित्रित हो जाता है। यदि आत्मा को सत्य नहीं मानते तो एतादृशी घटना कदापि सम्भव नहीं हो सकती; क्योंकि जो यथार्थ में है ही नहीं उस वस्तु में अन्य वस्तुओं की छाया पड़ना अथवा उनके स्वरूप का प्रतिफलन होना किसी प्रकार युक्ति-सम्मत नहीं। निराकार

और कल्पित पदार्थों में साकार पदार्थों का चित्र खचित होते किसी ने नहीं देखा। दर्पण चाहे कितना ही सूक्ष्म और मोम का पत्र कितना ही पतला तन्तुमय क्यों न हो, तथापि होना उनका अत्यावश्यक है, क्योंकि बिना उनकी स्थिति के पदार्थों का प्रतिबिम्बित और अङ्कित होना सर्वथैव असम्भव है। अतएव आत्मा की सत्यता में शङ्का नहीं हो सकती।

अध्यात्म-विद्या के वेत्ता योरोपीय विद्वान् कहते हैं कि जागतिक पदार्थों का प्रथम ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों को होता है, फिर मन को होता है, और अनन्तर आत्मा को होता है, यदि आत्मा भी यथार्थ में कोई वस्तु है। एतादृशी कल्पना करने से ज्ञानेन्द्रियाँ और मन दोनों को साकार मानना पड़ता है, क्योंकि आकार-रहित वस्तुओं में आकार-सहित जड़ात्मक भौतिक पदार्थ कदापि अंकित नहीं हो सकते। फिर, मन एक अदृश्य और निराकार अन्तरिन्द्रिय है। उसमें कहिए किस प्रकार साकार पदार्थों का रूप प्रतिफलित हो सकता है। यही दशा दूसरी ज्ञानेन्द्रियों की भी है, जो सर्वतोभाव से निराकार हैं। इन्द्रियों से हमारा अभिप्राय दृग्गोचर शरीर के चक्षुरादि अवयवों से नहीं; किन्तु जिन्हें नेत्रों से देख नहीं सकते ऐसी स्पर्श, श्रवण, दर्शनादि ज्ञानात्मक शक्तियों से है। अतः ये निराकार इन्द्रियाँ भी साकार भौतिक पदार्थों का ज्ञान स्वतन्त्रतया प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकतीं।

एक उदाहरण लीजिए। कल्पना कीजिए कि हमारा व्यायाम करने का समय है। इच्छा करते ही हमारे हस्तद्वय नीचे की ओर बढ़ते हैं, और बीस-बीस सेर के मुद्‌गर उठाकर लीलाक्रम से उन्हें हिलाना आरम्भ करते हैं। अब यदि आत्मा को निराकार, कल्पनामय और शून्य मानते हैं तो, कहिए, इस साकार जड़ात्मक मन भर के भार का उठाना कैसे सम्भव है? यदि कहिए कि हस्त द्वारा, तो हस्तद्वय को किसने उठाया। यदि कहिए, मस्तिष्क में स्थित ज्ञानतन्तुओं के प्रवाह ने; तो फिर वही प्रश्न उद्‌भूत होता है कि उस प्रवाह को किसने प्रवाहित किया। अतएव जब तक आत्मा को तत्व न मानोगे और समस्त शारीरिक व्यापारों का कर्त्ता उसे न स्थिर करोगे तब तक इस प्रकार की आपत्तियों से छुटकारा नहीं मिल सकता।

आत्मा के अतिरिक्त मनुष्य तीन भागों में विभक्त है। शरीर, इन्द्रिय और मन। अब हमको इसकी परीक्षा करना है कि इन तीनों में से किसी में आत्मा की अतिव्याप्ति तो नहीं होती; अर्थात् आत्मा का लक्षण जो ज्ञानात्मकता है वह इनमें पाई जाती है अथवा नहीं।

हम प्रथम शरीर की परीक्षा करेंगे। गौतम मुनि ने अपने न्यायदर्शन में शरीर का यह लक्षण लिखा है—

चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्।

अध्याय १, सूत्र ११

अर्थात् चेष्टा, इन्द्रिय और अर्थ इनके आश्रय को शरीर कहते हैं। चेष्टा से चलना आदि सारे कार्य्य-कलाप; इन्द्रिय से पञ्चज्ञानेन्द्रिय; अर्थ से ज्ञानेन्द्रिय द्वारा पदार्थों के संयोग-वियोग का ज्ञान और तज्जनित सुख-दुःखादि समझने चाहिएँ। जैसे मृत्तिका से घर बनता है वैसे ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पाँच तत्वों के मेल से शरीर बनता है। यह नियम* है कि जो जिस वस्तु से बनता है उसका गुण उसमें न्यूनाधिक भाव में अवश्य रहता है। यदि शरीर को सचेतन और सज्ञान मानते हैं तो इन पाँच पदार्थों को भी तद्वत् मानना पड़ता है, क्योंकि यह नहीं हो सकता कि कार्य में जो वस्तु देख पड़े वह कारण में न पाई जाय।

परन्तु पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और आकाश को क्या कभी किसी ने सचेतन और सज्ञान देखा है? कभी नहीं। अतएव चेतनत्व और ज्ञानात्मकत्व शरीर का नहीं, किन्तु अन्य किसी वस्तु का धर्म है और जिसका वह धर्म है उसी को आत्मा कहते हैं। यदि शरीर का धर्म होता तो जब तक उसका लोप न हो जाता तब तक तद्धर्म्म का भी लोप न होना चाहिए था; क्योंकि धर्म्मी और धर्म्म का यही स्वभाव है। परन्तु मरणानन्तर शरीर पूर्ववत् बना रहने पर भी ज्ञान का अभाव

---

* कारणपूर्वकः कार्य्यगुणो दृष्टः अध्याय २, आह्निक १, सूत्र २४—अर्थात् जो गुण कारण में होता है वही कार्य में भी पाया जाता है।

हो जाता है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि पञ्चभूतात्मक शरीर ज्ञानवान् नहीं। अतः आत्मा का उससे पृथक् होना प्रमाणित है।

शरीर के अनन्तर इन्द्रियों का विचार करना है—"घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः"—इस न्याय-सूत्र के प्रथमाध्यायोक्त १२ वें सूत्रानुसार ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं—नासिका, रसना, नेत्र, त्वचा और श्रोत्र। ये ज्ञानेन्द्रियाँ "पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशमिति भूतानि" इस तेरहवें सूत्रानुसार पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पञ्चभूतों से उत्पन्न हुई हैं। घ्राण लेना, आस्वादन करना, देखना, स्पर्श करना और सुनना, यह इन पञ्चेन्द्रियों के यथाक्रम पाँच विषय हैं। इन्द्रियों से हमारा अभिप्राय शरीर के नेत्रादि अवयवों से नहीं; किन्तु उन अवयवों में देखने, सुनने, स्पर्श करने, सूँघने, और आस्वादन करने की शक्ति जिनमें है उन आन्तरिक अदृश्य इन्द्रियों से है। ये इन्द्रियाँ आत्मा को इस पाँच प्रकार के ज्ञान का साक्षात्कार करा देने की साधक हैं; परन्तु देह के उन-उन अवयवों से पृथक् हैं। यह सुनकर आश्चर्य न करना चाहिए, क्योंकि कभी-कभी यह देखा गया है कि कान का आकार नष्ट हो जाने पर भी श्रवण-शक्ति में व्यत्यय नहीं आता और नेत्र के आकार में विशेष परिवर्तन न होने पर भी आलोक-शक्ति जाती रहती है। रात को बहुतेरे मनुष्यों को कुछ भी नहीं देख पड़ता। यह ज्ञानेन्द्रियों

के पृथक् होने का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यही दशा अपरेन्द्रियों की भी समझना चाहिए।

फिर, सुषुप्ति में भी जब शरीर के समग्र अवयव निश्चेष्ट हो जाते हैं, मनुष्य स्वप्नावस्था को प्राप्त होकर नाना प्रकार के दृश्य देखता है; नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पों का सुवास लेता है; नाना प्रकार के मनोहर वाक्य सुनता है; और नाना प्रकार के मधुर, कटु, तिक्त आदि रसों का आस्वादन भी करता है। यदि ये इन्द्रियाँ दृग्गोचर अवयवों से भिन्न न होतीं तो सुषुप्ति में नेत्र से कुछ न देख पड़ता, कर्ण से कुछ न सुन पड़ता, और हस्त द्वारा स्पर्श करने से कुछ भी ज्ञान न होता। इन इन्द्रियों में ज्ञानात्मकता नहीं है। ज्ञानात्मकता आत्मा ही में है। आत्मा इनके द्वारा बहिर्विषयों का ज्ञान मात्र प्राप्त करता है; परन्तु स्वयं इन्द्रियों में किसी प्रकार का ज्ञान नहीं रहता। विद्युद्यन्त्र की बैटरी और तार में जो सम्बन्ध है वही आत्मा और इन्द्रियों में भी है। जैसे विद्युच्छक्ति तार में नहीं, किन्तु बैटरी में गुप्त रीति से विद्यमान रहती है और तार द्वारा प्रवाहित होकर अपेक्षित स्थान को जाकर, पुनरपि उसी बैटरी में प्रविष्ट हो जाती है, वैसे ही ज्ञान आत्मा में विद्यमान रहता है और इन्द्रियों के द्वारा भौतिक पदार्थों से संयोग करके पूर्ववत् आत्मा में लीन हो जाता है। इन्द्रियों को चेतन और सज्ञान नहीं मान सकते; क्योंकि लोक में अनुभव करते हैं कि रूप

का देखनेवाला रस और गन्ध का अनुमान कर सकता है; ऐसे ही रस का जाननेवाला रूप और गन्ध का अनुमान कर सकता है। किसी खट्टे पदार्थ को देखते ही मुख से पानी टपकने लगता है। अतः यदि सब इन्द्रियों का परिचालक एक न होता तो यह व्यापार कदापि सम्भव न था; क्योंकि नेत्र से देखे गये पदार्थ का ज्ञान रसना को होना नैसर्गिक नियमों के विरुद्ध है। जो जिसे देखे अथवा सुनेगा उसका प्रत्यभिज्ञान उसी को होगा, अन्य को नहीं। जिस फल को हमने प्रथम देखा और जिसका आस्वादन किया है उसको द्वितीय बार देखते ही आस्वादन किये बिना उसके पूर्व रस का स्मरण हो आना स्मृति का स्वभाव है। यह स्मृति आत्मा का धर्म्म है, जिससे सिद्ध होता है कि इन्द्रियाँ स्वतन्त्र ज्ञानवान् नहीं हैं; किन्तु आत्मा को जागतिक पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कराने की साधन मात्र हैं।

एक इन्द्रिय द्वारा किसी वस्तु का ज्ञान यदि एक बार भी हो जाता है तो कालान्तर में उस वस्तु का संयोग अन्येन्द्रिय द्वारा होने से भी प्रथम ज्ञान का तत्काल स्मरण आत्मा को होता है। इसी से यह व्यक्त है कि इन समग्र इन्द्रियों का परिचालक आत्मा है। जो पदार्थ हमने नेत्र द्वारा देखा था उसे हाथ से स्पर्श करते हैं और जिसे स्पर्शेन्द्रिय द्वारा स्पर्श किया था उसे नेत्र से देखते हैं। इस प्रकार का ज्ञान एक-विषयक और एककर्त्तृक है; न तो इसका कर्त्ता देह है और न

इन्द्रिय। अतएव नेत्र और त्वगिन्द्रिय से एक ही विषय का जो अनुभव करनेवाला है वह देह और इन्द्रिय से भिन्न आत्मा है। इन्द्रियों से आत्मा के भिन्न होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इन्द्रियों के नष्ट हो जाने से तद्द्वारा प्राप्त किया गया पूर्व ज्ञान नष्ट नहीं होता। अन्धे हो जाने अथवा नेत्रों को समूल निकाल लेने पर भी रूप-रङ्ग आदि का किया हुआ पूर्व ज्ञान यथावत् बना रहता है, जिसका फलितार्थ यह निकलता है कि इन्द्रियाँ ज्ञान की केवल साधक हैं; ज्ञाता कोई अन्य ही है।

इन्द्रियों की परीक्षा के अनन्तर अब मन के परीक्षण की बारी है। गौतम मुनि ने अपने न्यायसूत्रों में लिखा है—

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्।

अध्याय १, सूत्र १६

अर्थात् अनेक ज्ञानों की एक साथ ही उपपत्ति न होने से जान पड़ता है कि ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त ज्ञान-साधन का और भी कोई कारण है। घ्राण आदि इन्द्रियों का गन्धादि अपने-अपने विषयों के साथ सम्बन्ध रहते भी एक समयावच्छेद करके उन-उन विषयों का ज्ञान आत्मा को नहीं होता; क्योंकि इन्द्रियों का सम्बन्धी एक दूसरा सहकारी कारण है, जिसका संयोग होने से ज्ञान होता है और जिसका संयोग न होने से ज्ञान नहीं होता। इस सहकारी कारण ही को मन कहते हैं। मन के संयोग की अपेक्षा न करके केवल इन्द्रिय

और विषय के संयोग ही को ज्ञान का कारण मानें तो एक साथ अनेक ज्ञान होने चाहिएँ; परन्तु यह अनुभव के विरुद्ध है; क्योंकि एक हो साथ चाहे नेत्र से देखते, कान से सुनते और त्वचा से स्पर्श करते रहें; परन्तु इन तीनों क्रियाओं को करते समय जिस इन्द्रिय के साथ मन का संयोग होगा उसी इन्द्रिय-जन्य ज्ञान का अनुभव आत्मा को होगा। जिस समय नेत्र द्वारा अपने किसी प्रिय जन की प्रतिकृति को अवलोकन करने में कोई तल्लीन हो जाता है उस समय सिर के ऊपर यदि कर्णभेदक दुन्दुभी भी बजा करें तो सुनाई नहीं पड़ती। इसका यही कारण है कि मन नेत्रेन्द्रिय-युक्त हो जाने से कर्णेन्द्रिय के कार्यों का उसे कोई समाचार नहीं मिलता और इसी लिए आत्मा को कर्ण से सन्निकृष्ट विषयों का ज्ञान भी नहीं होता। आत्मा और इन्द्रियों के मध्य मन तार का सा कार्य्य करता है। आत्मा उसे जिस इन्द्रिय से संयुक्त कर देता है उसी के कृत विषयों का साक्षात्कार उसको होता है और जिससे वह उसे संयुक्त नहीं करता, वह चाहे विषयों से कितना ही सन्निकर्ष करे, तथापि आत्मा को तज्जनित ज्ञान नहीं होता। मन के होने का एक और प्रमाण यह है कि स्मृति आदि विषय, जिनका किसी इन्द्रिय से संयोग नहीं, वे केवल मन के द्वारा जाने जाते हैं। यदि मन न होता तो पूर्वकृत कार्यों का स्मरण किस प्रकार होता? मन अन्तरिन्द्रिय है; आत्मा उसके द्वारा विषयों का मनन करता है।

यह कार्य अन्येन्द्रियों द्वारा नहीं हो सकता। सुख, दुःख, स्मरणादि का ज्ञान केवल मन से होता है; अतएव उसे एक पृथक् इन्द्रिय मानना ही पड़ता है। जब मन का इन्द्रिय होना सिद्ध हो गया तब उसे सचेतन और सज्ञान कदापि नहीं कह सकते; क्योंकि इन्द्रियों का चालक कोई अन्य ही होना चाहिए; इन्द्रियाँ स्वयमेव, बिना किसी प्रेरक के, किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं हो सकतीं। यदि मन में ज्ञानात्मकता होती तो अनेक विषयों का ज्ञान उसे एक बार ही हो जाता। परन्तु यह अनुभव के सर्वथैव विरुद्ध है। तस्मात् शरीर, इन्द्रिय और मन के अतिरिक्त समस्त विषयों के ज्ञाता आत्मा का अस्तित्व सिद्ध है

आत्मा का होना तो सिद्ध हुआ, परन्तु उसके न देख पड़ने से उसके अस्तित्व में यदि शङ्का की जाय तो एतादृशी शुष्क शङ्का का समाधान सहज ही में हो सकता है। गौतम मुनि अपने न्याय-सूत्रों में लिखते हैं—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखादिज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्।

अध्याय १, सूत्र १०

अर्थात् इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःखादि का ज्ञान आत्मा का लिङ्ग अर्थात् चिह्न है। अभिलषित वस्तु को देखने से आनन्द होता है, जिससे जान पड़ता है कि आनन्द का अनुभव करनेवाला शरीर में कोई अवश्य है। इसी भाँति द्वेष, प्रयत्नादि के विषय में भी जानना चाहिए परन्तु यदि यह कोई अच्छा समाधान न समझा जाय तो हमारा यह प्रश्न है कि इस विस्तृत

विश्व में समस्त वस्तुओं का ज्ञान क्या नेत्रेन्द्रिय से होना सम्भव है? ऐसे थोड़े ही पदार्थ हैं जिन्हें हम नेत्र से देख सकते हैं। अनुमान से जिनका ज्ञान होता है, ऐसे ही अधिक हैं। यह देखने में आता है कि जितने अद्भुत अद्भुत विज्ञान हैं उनके कारण सदैव गुप्त रहते हैं; नेत्र से नहीं देखे जा सकते हैं। परन्तु ऐसा होने से क्या कोई उनके अस्तित्व में शङ्का करता है? पृथ्वी की आकर्षणशक्ति को लीजिए। वालुका की छोटी सी छोटी कणा से लेकर सूर्यमण्डल तक सारे पदार्थ इस आकर्षण-नियम से नियमित हैं। इसी के कारण ग्रह, नक्षत्र और राशियाँ अपनी-अपनी कक्षाओं में भ्रमण करती हैं; इसी के कारण ग्रहण पड़ता है; और इसी के कारण ऋतुओं में भी परिवर्तन होता है। किंबहुना अल्प से अल्प भी पदार्थ इस शक्ति के नियमों से बहिर्भूत नहीं हैं। परन्तु हम पूछते हैं कि इस अद्भुत और जगद्व्यापिनी शक्ति को क्या किसी ने देखा है? किसी ने नहीं।

फिर जब इसका अस्तित्व स्वीकार है तो हमारे आत्मा ने क्या अपराध किया है? न्यूटन* महाराज के ऊपर तो इतना विश्वास कि उनका वचन वज्रलेप समझ लिया गया; और हमारे ऋषियों के ऊपर इतना अविश्वास कि नाना प्रकार से आत्मा की सिद्धि करके समझाने पर भी शङ्का?

---

* पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति को आर्य्यभट्ट, भास्कराचार्य्य आदि हमारे प्राचीन ज्योतिषी पहले ही से जानते थे।

दूसरा उदाहरण विद्युत् का लीजिए। जितने जागतिक पदार्थ हैं सबमें वह न्यूनाधिक भाव से व्याप्त रहती है और घर्षण तथा अन्य रासायनिक प्रयोग द्वारा प्रबुद्ध की जाने पर वह अपना भीषण प्रभाव प्रकट करती है। जिस समय तारयन्त्र पर, नियमित रीति के अनुसार, आघात किया जाता है, तत्क्षणात् विद्युत् की अदृश्य धारा शतशः मील तक फैले हुए तार से होती हुई इच्छित स्थान तक पहुँचा जाती है और वहाँ पहुँचकर, यन्त्र में सूइयों को दाहिनी बाईं ओर वेग से हिलाती है; चुम्बक में प्रवेश करके कर्णभेदक शब्द करती है; घण्टी बजाती है और नाना प्रकार के वाक्य पेन्सिल अथवा स्याही से काग़ज़ के ऊपर लिख तक देती है। इतनी आश्चर्यकारक घटनायें तो अवश्य देख पड़ती हैं; परन्तु घटनाओं का कारण विद्युद्देवी फिर भी दृष्टिगोचर नहीं होती तो क्या इससे विद्युत् के अस्तित्व में शङ्का की जा सकती है? कदापि नहीं। तड़िद्यन्त्र की वार्ता तो सूक्ष्म भी है; अब तो रेल भी तड़ित् द्वारा चलाई जाने लगी है, और घर-घर में नेत्रप्रतिघातकारी दीपक भी तड़ित् ही के जलने लगे हैं। इन सब उदाहरणों से व्यक्त है कि अनेक पदार्थों का आदि-कारण अदृश्य रहता है। उसका अस्तित्व उसके अद्भुत-अद्भुत कार्यों ही से अनुमान किया जाता है। यही दशा आत्मा की भी है। अति सूक्ष्म होने के कारण वह यद्यपि दृष्टि से नहीं देखा जा सकता तथापि इन्द्रियों के व्यापारादि और सुख-दुःखादि के अनुभव से उसका अस्तित्व भली भाँति प्रमाणित होता है।

इस प्रस्ताव के आदि में आत्मा का जो लक्षण लिखा गया है उसके अनुसार आत्मा नित्य है, अर्थात् जनन के प्राक् भी वह था और मरण के अनन्तर भी वह रहेगा। इससे यह ध्वनितार्थ निकलता है कि आत्मा अविनाशी है। अतएव आत्मा का अस्तित्व प्रतिपादन करके अब उसके नित्यत्व के विषय में भी कुछ कहना आवश्यक है।

संसार में जो कुछ परस्पर-विरोधी है उसकी उत्पत्ति सदैव अपने विरोधी से होती है। यह सर्वव्यापक सिद्धान्त है। विरोधी वस्तुओं अथवा गुणों से हमारा अभिप्राय पाप-पुण्य, मलिन-उज्ज्वल, उच्च-नीच, कटु-मिष्टादिवत् जितने युग्म हैं, उनसे है। उदाहरणार्थ जब हम कहते हैं कि अमुक पदार्थ अधिक हो गया तब यह सूचित होता है कि वह पहिले न्यून था और पश्चात् न्यून से अधिक हुआ। अधिक और न्यून परस्पर-विरोधी हैं। अतः जैसे न्यून में कुछ मिला देने से वह अधिक हो जाता है वैसे ही अधिक से कुछ खींच लेने से वह न्यून हो जाता है; इसी तरह अशक्त बलवान् से और बलवान् अशक्त से, उच्च नीच से और नीच उच्च से तथा वेगगामी मन्द-गामी से, और मन्दगामी वेगगामी से उत्पन्न होता है। जितने परस्पर-विरोधी युग्म हैं उनके अङ्गद्वय के मध्य दो प्रकार की उत्पादक शक्तियाँ स्थित रहती हैं जो पहले से दूसरे और दूसरे से पुनः पहले में पाई जाती हैं। दीर्घ और ह्रस्व के मध्य वृद्धि और ह्रास स्थित हैं। इसी लिए हम कहते हैं कि एक वृद्धि को

श्रौर दूसरा ह्रास को प्राप्त होता है। इन उदाहरणों से प्रमाणित है कि विरोधी अपने ही विरोधी से उत्पन्न होता है और दो विरोधियों के मध्य परस्पर उत्पादकता का सदैव सम्बन्ध रहता है। इस सिद्धान्तानुसार जैसे सुषुप्ति का विरोधी जागरण है वैसे ही जीवन का विरोधी मरण है। सुषुप्ति और जागरण इन दोनों में दो प्रकार की उत्पादक शक्तियाँ हैं, अर्थात् सुषुप्ति से जागरण की और जागरण से सुषुप्ति की उत्पत्ति होती है; यह नहीं कि कोई मनुष्य सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होकर जाग्रत न हो, और जाग्रत होकर फिर कभी निद्रित न हो। इसी प्रणाली द्वारा जीवन और मरण में स्पष्ट विरोध होने के कारण यह कहने में कोई आपत्ति नहीं कि मरण से जीवन और जीवन से पुनरपि मरण की उत्पत्ति होती है; अर्थात् जो कुछ जीवित है सब मृत से उत्पन्न हुआ है और जो कुछ मृत हो चुका सब जीवित ही से मृत्यु को पहुँचा है।

आत्मा की स्थिति ही जीवन और आत्मा का शरीरत्याग ही मृत्यु है। अतः पूर्व उदाहरण के अनुसार उसका नित्यत्व सिद्ध है। यह नहीं हो सकता कि और सारे विरोधी युग्मों की तो परस्पर एक दूसरे से उत्पत्ति हो; परन्तु मृत और जीवित की न हो। नैसर्गिक नियम एक से व्यापक होते हैं; उनमें अपवादकता सम्भव नहीं। जीवन और मरण, जिनसे आत्मा ही का प्रादुर्भाव और लोप समझा जाता है, परस्पर एक दूसरे से उत्पन्न होते हैं। जब यह सिद्ध हो गया

तब आत्मा की अविनाशकता पृथक् सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं देख पड़ती। यदि आत्मा को श्वासोच्छ्वास-वत् तरल और विनाशवान् पदार्थ मानते हैं और यह शङ्का करते हैं कि एक बार मृत्यु को प्राप्त होने से उसका अत्यन्ता-भाव हो जाता है तो यह भी साथ ही मानना पड़ता है कि जो कुछ इस जगत् में है किसी समय सभी मृत्यु को प्राप्त हो जायगा; जीवित का नाम भी शेष न रहेगा, क्योंकि, यदि मृत-देहस्थ आत्मा का पुनर्जन्म न मानकर प्रति बार प्रति आत्मा की किसी अन्य पदार्थ से उत्पत्ति मानते हैं, तो वे सब अन्य पदार्थ अवश्यमेव कालान्तर में नष्ट होकर इस विस्तृत विश्व को शून्यमय कर देंगे। किम्बहुना, स्वयं यह विश्व ही यदि आत्मा में परिणत होकर एक दिन विनष्ट हो जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं। परन्तु यह नितान्त निर्मूलक कल्पना है ईश्वरीय नियमों में त्रुटि नहीं होती। अतः आत्मा को नित्य अर्थात् अविनाशी मानना ही चाहिए।

ग्रीस देश में साक्रेटिस नाम का एक महान् तत्ववेत्ता हो गया है। आत्मा के नित्यत्व-विषय में जो प्रमाण हमने ऊपर दिया वह उसी के सिद्धान्तों के अनुसार है। हमारे देशवासी दर्शनशास्त्र के आचार्यों ने भी आत्मा का नित्यत्व अनेक प्रकार से सिद्ध किया है। उनके कहने का संक्षिप्त सारांश यह है कि उत्पन्न हुए बालक को इस जन्म के अज्ञात हर्ष, भय और शोक के कारणों से हर्ष, भय और शोक होते

देखा जाता है। ये विकार स्मरण की परम्परा से होते हैं; अन्यथा नहीं। स्मरण की परम्परा प्रथमाभ्यास के बिना नहीं हो सकती; और प्रथमाभ्यास पूर्व जन्म के बिना नहीं हो सकता; जिससे यह सिद्ध है कि शरीर के विनाश होने पर भी आत्मा रहता है और पुनर्वार जन्म लेता है। यदि ऐसा न मानेंगे तो अत्यल्प बालकों को होनेवाले हर्षादि विकारों का और क्या कारण कहा जायगा? जैसे पञ्चभूतात्मक पद्मादि पुष्पों का प्रफुल्लित और मुकुलित होना आदि विकार उष्ण, शीत और वर्षा कालादि कारणों से होते हैं, वैसे ही बालक में व्याप्त आत्मा को हर्ष-शोकादि विकारों का कारण प्रथम जन्म में अभ्यास के स्मरण की परम्परा ही है; दूसरा निमित्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार सद्योजात बालक अथवा बछड़े को उत्पन्न होते ही दूध पीने के लिए व्यग्र देखकर प्रथम जन्माभ्यस्त भोजन में प्रवृत्ति प्रकट होती है, क्योंकि यह सदैव अनुभव किया जाता है कि आहार के अभ्यास से उत्पन्न स्मृति के योग से बुभुक्षित प्राणियों को भोजन की इच्छा होती है और पूर्व शरीर के बिना यह इच्छा तत्काल उत्पन्न हुए जीव को नहीं हो सकती। इससे अनुमान होता है कि यह जीव पहिले किसी शरीर में स्थित ज़रूर था और उस शरीर में इसने भोजन का अभ्यास किया था। अब यह प्रथम शरीर को परित्याग करके दूसरे शरीर में आया है और बुभुक्षा से क्लेशित होकर पूर्वाभ्यस्त आहार के स्मरण से दुग्ध-पान की इच्छा

करता है। अतः यह प्रमाण-सिद्ध है कि देह के ध्वंस हो जाने से आत्मा का ध्वंस नहीं होता। आत्मा के नित्यत्व का एक और भी प्रमाण यह है कि वेदान्त, सांख्यादि शास्त्रोक्त आत्मवचनानुसार वीतराग पुरुष का जन्म नहीं होता। केवल सराग ही अर्थात् ऐसे जीव, जिन्हें सांसारिक विषयों ने बद्ध कर रक्खा है, पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं। पूर्व जन्म में अनुभव किये गये विषयों की चिन्ता ही राग का मूल कारण है; और विषयों की चिन्तना, पूर्व जन्म में, बिना शरीर के हो नहीं सकती। अतएव यह स्पष्ट है कि आत्मा प्रथम शरीर में भोगे हुए विषयों का स्मरण करता हुआ उनमें आसक्त होता है। इसी भाँति प्रथम शरीर का उसके पहले शरीर के साथ सम्बन्ध जान लेना चाहिए। जीव का शरीर के साथ अनादि सम्बन्ध होने और राग की परम्परा भी अनादि होने से भी आत्मा का नित्यत्व सिद्ध है। पूर्वोक्त आशय हमने गौतम के न्यायसूत्रों के भाष्य से उद्धृत किया है। सूत्र ये हैं—

पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धात् जातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तेः पद्मादिषु प्रबोधसम्मीलनविकारवत्तद्विकारः।

नोष्णशीतवर्षाकालनिमित्तत्वात् पञ्चात्मकविकाराणाम्। प्रेत्याहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात्।

वीतरागजन्मादर्शनात्।

अध्याय ३, सूत्र १९, २०, २१, २२, २५।

आत्मा के लक्षण में यह कहा गया है कि वह व्यापक है। अतएव उसके व्यापकत्व की भी संक्षिप्त समालोचना

करके इस प्रबन्ध को हम समाप्त करते हैं। संसार में जितने पदार्थ हैं, सूक्ष्मतया विचार करने पर उन सबका तत्व एक ही जान पड़ता है। जितने घट देखने में आते हैं, चाहे छोटे हों चाहे बड़े, सबका मूल तत्व मृत्तिका है। इसी प्रकार सुवर्ण के जितने आभूषण हैं, चाहे वे आकार में कैसे ही हों और चाहे वे कितने ही नामों से अभिहित किये जाते हों, मूल तत्त्व उनका सुवर्ण है। इससे स्पष्ट है कि भिन्न भिन्न आकार और संज्ञा को प्राप्त होने से पदार्थों के आदि तत्व में भिन्नत्व नहीं आता। सुवर्ण वस्तु हम नेत्र से देखते हैं और उसके आकार को जब चाहें बिगाड़ सकते हैं। लम्बे को चौड़ा और चौड़े को लम्बा बनाने में कोई कठिनता नहीं पड़ती। यहाँ तक कि उसे गलाकर जलवत् तरल और भाफ भी कर डालते हैं। तिस पर भी उसका अत्यन्ताभाव नहीं होता। इससे यह विदित होता है कि सुवर्ण का मूल तत्व गुप्त है। वह एक ऐसा तत्व है कि किसी प्रकार उसका नाश नहीं होता। सुवर्ण को तुम चाहे जिस रङ्ग-रूप का कर डालो, उसका अभाव नहीं होने पाता। यह आदि तत्व आत्मा ही है। जैसे प्राणियों में आत्मा के स्थित रहने ही से शरीर की वृद्धि, ह्रास और और अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं वैसे ही भौतिक पदार्थों के विषय में भी समझना चाहिए। यदि उनमें आत्मतत्त्व न रहता तो उनकी स्थिति किसी प्रकार सम्भव न थी। जिस तत्त्व के कारण सुवर्ण सदृश जड़ात्मक पदार्थों के भी रूप-रङ्गादि

का ज्ञान लोगों को होता है, वह अवश्यमेव ज्ञानवान् होगा, क्योंकि जो स्वयं ज्ञान नहीं रखता वह औरों के ज्ञान का कारण कैसे हो सकेगा ?

ज्ञानात्मकता ही आत्मा का लक्षण है; जिसे, विचारपूर्वक देखने से, वालुका की कणा से लेकर प्रकाण्ड सूर्यमण्डल तक सभी पदार्थों में पाते हैं। अतएव आत्मा को व्यापक कहना प्रमाण-सङ्गत अङ्गीकार करना चाहिए।

सुवर्णादि पदार्थों में भी जब उनका सत्व-रूप होकर आत्मा व्याप्त है तब मनुष्य में उसके व्यापकत्व का विश्वास न करना महीयसी मूर्खता है। प्राणिमात्र में व्याप्त आत्मा के अस्तित्व का निरूपण ऊपर हो चुका है; तथापि यहाँ भी प्रसंगानुसार हम पुनर्वार इतना अवश्य कहना चाहते हैं कि प्रतिशरीर में देह, देहावयव और इन्द्रियादि से भिन्न, चेतनस्वरूप, विज्ञानमय, आत्मा का निवास है; और वह अपने अस्तित्व को "हम" इस शब्द से सूचित करता है। "हमारी देह", "हमारा हाथ", "हमारा पैर", "हमारा मुख" और "हमारा मन" इत्यादि वाक्यों से प्रमाणित होता है कि देह, हाथ, पैर, मुख, और मन को अपना कहनेवाला उनसे भिन्न और कोई है; क्योंकि यह बात व्यवहार-सिद्ध है कि जिसके ऊपर जिसका स्वत्व रहता है वह सदैव उससे पृथक् होता है; यह नहीं कि यदि हम कहें कि "हमारी लेखनी" तो लेखनी से हमारा ही ज्ञान हो; नहीं; लेखनी से भिन्न उसके स्वामी "हम" पृथक् ही

हैं। फिर, जब मनुष्य शयन करता है तब आत्मा और इन्द्रियों का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। सुषुप्ति अवस्था में शरीर व्यापार-शून्य हो जाता है और अहम्भाव का ज्ञान भी जाता रहता है। तथापि "मैं" या "हम", जिसे संस्कृत में "अहम्" कहते हैं, फिर भी जागृत रहता है—और मनुष्यों के जाने पर उस "हम" का शरीर के साथ संयोग होते ही तुरन्त यह स्मरण हो आता है कि "आज हम सुख से सोये"। यदि यह "हम" शरीरादि से पृथक् व्यापक और ज्ञानमय न होता तो एतादृश स्मरण भी कभी न होता; क्योंकि यह सम्भव नहीं कि कार्य का कर्त्ता एक हो और क्रिया-जन्य स्मरण दूसरे को हो। निद्रितावस्था में भी वह "हम" पूर्ववत् प्रबुद्ध रहता है। यह "हम" ही आत्मा है। ज्योतिःस्वरूप होने के कारण यह आत्मा सोते, जागते, सदैव अशेष कार्य-कलाप का साक्षी समझा जाता है। प्रति शरीर में व्याप्त आत्मा उस अद्वितीय और सर्वज्ञ परमात्मा ही का अंश है। अविद्या से बद्ध होने के कारण आत्मा को कर्म्मजन्य फल भोग करना पड़ता है; परन्तु परमात्मा को नहीं। यही उसमें और परमात्मा में अन्तर है। स्वभावतः आत्मा, परमात्मा ही के समान निर्विकार, चैतन्य और ज्ञानमय है। शङ्कराचार्यजी भी यही कहते हैं—

प्रकृतिविकृतिभिन्नः शुद्धबोधस्वभावः
सदसदितिविशेषं भासयन्निर्विशेषः।

विलसति परमात्मा जागृदादिष्ववस्था-
स्वहमहमितिसाक्षात् साक्षिरूपेण बुद्धेः ॥

विवेकचूड़ामणि

अर्थात् प्रकृति के विकार से भिन्न, शुद्ध-बोध-स्वभाव, निर्वि-शेष, परमात्मा सत् और असत् के भेद को बताता हुआ तथैव जागृदादि अवस्था में "अहं" "अहं" इस प्रकार बुद्धि का साक्षात् साक्षिरूप होता हुआ घट-घट में विद्यमान है।*

[जनवरी १९०१

---

* सङ्कलित

आत्मा के अमरत्व का वैज्ञानिक प्रमाण

जितने उपनिषद् हैं, जितने वेदान्त या दर्शनशास्त्र के ग्रन्थ हैं, सभी इस बात को पुकार-पुकारकर कह रहे हैं कि आत्मा अमर है, वह कभी नहीं मरता। उसका कभी नाश नहीं होता। उसे आग नहीं जला सकती; उसे पानी नहीं डुबो सकता; उसे शस्त्र नहीं छिन्न कर सकता। जिसे लोग मरना कहते हैं उस मरने के पहले भी वह था; उसके बाद भी वह बना रहेगा। वह अविनाशी है; वह अमर है। 'आत्मा'-शब्द, संस्कृत में पुँल्लिङ्गवाची है। पर हिन्दी में लोगों ने उसे स्त्रीत्व भी दे रक्खा है। पण्डितों का मत तो यह है कि आत्मा न स्त्री है, न पुरुष और न क्लीब। वह इन उपाधियों से अलग है। उसमें इस तरह का कोई चिह्न नहीं जिससे उसका लिङ्ग-विशेष सूचित हो। अतएव उसे चाहे कोई जिस लिङ्ग से निर्देश करे उसके आत्मत्व में—उसके आत्मापन में—कोई अन्तर नहीं आता।

आत्मा की अविनाशिता में अनेक पाश्चात्य पण्डितों का भी विश्वास है। वे भी उसे अविनाशी समझते हैं। वे भी उसे अमर मानते हैं। वे भी कहते हैं कि शरीर छूट जाने पर भी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है। उसका लोप नहीं होता।

अब एक पण्डित ने इस बात का वैज्ञानिक प्रमाण दिया है। इस प्रमाण ने पढ़े-लिखे आदमियों को आश्चर्य में डाल दिया है; इस बात को न माननेवालों के कान खड़े कर दिये हैं; उनके विचार-जलनिधि में कल्पनाकल्लोलों की उत्तुङ्ग माला उत्पन्न कर दी है। नास्तिक भी आस्तिक हो रहे हैं; विद्वान् भी अपनी भूलें स्वीकार कर रहे हैं; बड़े-बड़े ज्ञानी और विज्ञानी भी अपने पुराने ज्ञान को नया कर रहे हैं। क्योंकि विज्ञान जिस बात को जैसा साबित कर देता है उसमें सन्देह की जगह नहीं रहती। उसकी फल-सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाणों के आधार पर होती है। अनुमान उसमें प्रवेश नहीं कर सकता। अनुमान को वह अपने पास आने ही नहीं देता। चार और चार मिलकर आठ होना ही चाहिए; आग का स्पर्श होने से तृण को जलना ही चाहिए; जो पदार्थ पानी से अधिक वज़नी है वह उसमें डूबना ही चाहिए। यन्त्र-विद्या भी विज्ञान ही की भित्ति पर अवलम्बित है। इससे जो यन्त्र जिस काम के लिए है उससे वह काम होना ही चाहिए। हाँ, यदि वह किसी आकस्मिक घटना से बिगड़ जाय तो बात ही दूसरी है। अमेरिका के मासाचसेट सूबे के च्यवीचासी नामक स्थान के पास एक विज्ञानशाला है। उसमें अध्यात्म-विद्या-सम्बन्धी काम होते हैं। अध्यापक यल्मर गेट्स उसके प्रधान अधिकारी हैं। उन्होंने एक दिन आत्मा-सम्बन्धी अपने एक आविष्कार से बड़े-बड़े विद्वानों को चकित कर दिया।

एक अँगरेज़ी-समाचारपत्र लिखता है कि अध्यापक गेट्स ने जो दृश्य दिखलाया वह सचमुच अजीब था। पर वह था सच। उसके सच होने की परीक्षा जिन लोगों ने की सबने उसे सही पाया। इस दृश्य को—इस तमाशे को—चाहे कोई माया कहे, चाहे छल कहे, चाहे भ्रान्ति कहे, चाहे स्वप्न कहे, चाहे जो कुछ कहे,—पर यह निर्भ्रान्त है कि कोई ऐसी चीज़ ज़रूर देख पड़ी जो काल्पनिक न थी; जिसके अस्तित्व का प्रमाण ऐसे लोग हैं जिन्होंने उसे देखा है और जिनकी प्रामाणिकता में ज़रा भी सन्देह नहीं। वह किसी ऐसी-वैसी युक्ति से नहीं देख पड़ी। गणितशास्त्र की सहायता से—गणितशास्त्र के योग से—वह दृग्गोचर हुई। और, गणित-विद्या के सच होने में तिल भर भी शङ्का नहीं। गणितशास्त्र के सिद्धान्तों को झूठ बोलने की आदत नहीं। उनकी सत्यप्रियता विश्वविख्यात है।

अध्यापक गेट्स एक प्रकार की हलकी किरणों से जाँच कर रहे हैं। यह जांच आत्मा से सम्बन्ध रखती है। इसे वे बहुत दिनों से कर रहे हैं। इन किरणो का रँग कुछ कालापन लिये हुए लाल है। ये कुछ-कुछ बनफ़शई रङ्ग की कही जा सकती हैं। पर इस रङ्ग से इनका रङ्ग कुछ गहरा है। 'यक्स-रेज़' (X-rays) नाम की किरणें जिस दरजे की हैं ये किरणें भी उसी दरजे की हैं। पर और-और बातों में इनमें और यक्स-रेज़ नाम की किरणों में उतना ही अन्तर है जितना

कि इनमें और ध्वनि में अन्तर है। इन किरणों में जो देदीप्यमान शक्ति रहती है वह अँधेरे में नहीं देख पड़ती। यदि किसी अँधेरे कमरे में वे उत्पन्न कर दी जायँ तो उनके प्रकाश को आदमी आँख से नहीं देख सकता। पर अध्यापक गेट्स ने इन किरणों को दृश्य कर दिया है। दीवार पर किसी चीज़ का लेप लगाकर फिर उस पर इन किरणों को डालने से ये देख पड़ने लगती हैं। इसी तरकीब से गेट्स साहब ने इनको दृग्गोचर किया है। जिस चीज़ का लेप वे दीवार पर लगाते हैं उस पर जब किरणें पड़ती हैं तब उसका रङ्ग बदल जाता है। इस चीज़ का नाम है रोडापसिन। आँख में देखने की जो शक्ति है वह इसी चीज़ की बदौलत है। प्रकाश को ग्रहण करने में और कोई चीज़ इसकी बराबरी नहीं कर सकती। तुरन्त के मारे हुए जानवरों की आँखों से अध्यापक गेट्स इस चीज़ को इकट्ठा करते हैं। जितने निर्जीव और इन्द्रियहीन पदार्थ हैं सब इन नई किरणों के योग से पारदर्शी हो जाते हैं। हड्डी, धातु, लकड़ी और पत्थर आदि के भीतर जाकर ये चमकने लगती हैं। जिस नली के भीतर से ये किरणें निकलती हैं उसके और पूर्वोक्त लेप से लिपी हुई दीवार के बीच जितनी निर्जीव चीज़ें रख दी जाती हैं उन सबको ये पारदर्शी बना देती हैं। पर ऐसा करने में न तो दीवार का रङ्ग बदलता है और न किसी तरह का छाया-चित्र ही दीवार पर पड़ता है। पर प्रत्यक्ष जीवधारियों को पारदर्शी बनाने में ये किरणें असमर्थ

हैं। यदि इन्द्रिय-विशिष्ट और सजीव पदार्थ मसाला लगी हुई दीवार और इन किरणों के बीच में आ जायँ तो उनकी छाया दीवार पर तुरन्त देख पड़ती है और जब तक उनमें सजीवता रहती है तब तक वह छाया पूर्ववत् बनी रहती है।

एक ज़िन्दा चूहा ग्लास की एक नली में डाल दिया गया। वह नली, दीवार से कुछ दूर पर, किरणों की राह में रख दी गई। जब तक वह चूहा ज़िन्दा रहा उसकी छाया दीवार पर बराबर पड़ती रही। पर जब वह मर गया तब उसका बदन सहसा पारदर्शी हो गया। इस वक्त अध्यापक गेट्स को एक बहुत ही विलक्षण बात देख पड़ी। जिस क्षण वह चूहा पारदर्शी हुआ उसी क्षण, ठीक उसी के आकार की, एक छाया नली के भीतर से निकली और मसाला लगी हुई दीवार की तरफ़ जाकर, कुछ दूर ऊपर, लोप हो गई। परीक्षा के वक्त गेट्स साहब के सहायक दो और अध्यापक भी थे। वे दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि उन्होंने इस छाया को दीवार पर, नीचे से ऊपर जाते हुए, अच्छी तरह देखा। यदि जाँच से इस बात का पता लग जाय कि इस छाया में जान है—वह सजीव है—तो सृष्टि होने के बाद विज्ञान की सहायता से, पहले पहल इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिले कि जिसे हम मौत कहते हैं उसके बाद भी ज़िन्दगी क़ायम रहती है—अर्थात् शरीर के अस्तित्व का नाश हो जाने पर भी आत्मा के अस्तित्व का नाश नहीं होता।

अध्यापक गेट्स ने आत्मा के अविनाशी होने का जो सबूत दिया है वह विज्ञान से दिया है। विज्ञान के नियमों के अनुसार परीक्षा करके उन्होंने उसके अमरत्व की सिद्धि की है। और विज्ञान कभी झूठ नहीं बोलता; वह कभी धोखा नहीं देता। वह जो कुछ कहता है, सच कहता है। जिस बात को वह सिद्ध कर देता है उसमें फिर कोई सन्देह नहीं रह जाता। यदि चूहे के बदन से निकली हुई किसी चीज़ की छाया को तुम साफ़-साफ़ देख सकते हो तो गाय, बैल, हाथी, घोड़ा—नहीं मनुष्य तक के शरीर से निकली हुई चीज़ की छाया को भी तुम देख सकोगे। शरीर में सजीवता का नाश होते ही, आदमी की बनाई हुई सारी रुकावटों को भेदकर, ऊपर की तरफ़, अनन्त आकाश में लीन हो जानेवाली यह चीज़ क्या है? उसको आप किस नाम से पुकारेंगे? और कोई चाहे उसे जो समझे, पर प्राच्यदेशीय पण्डित उसे फ़ौरन् ही 'आत्मा' कहेंगे।

क्रिश्चियन-धर्म के अनुयायियों में जो लोग सन्देहवादी हैं वे कहते हैं—ऊपर आकाश को जानेवाले आदमी के आत्मा और नीचे पाताल को जानेवाले पशुओं—हैवानों—के आत्मा को कौन जान सकता है? पर क्रिश्चियनों की पुरानी धर्म-पुस्तक (Old Testament) के भविष्यद्वादी महात्माओं की अपेक्षा इस बीसवीं शताब्दी में, विशेषतर ज्ञानी और विशेषतर परोक्षदर्शी पुरुषों के होने की सम्भावना है। वे लोग विज्ञान के

बल से सन्देहयुक्त बातों को सन्देहहीन सिद्ध करेंगे और अनन्त आकाश में लीन हो जानेवाली अज्ञात वस्तुओं का भी पता लगावेंगे। मरे हुए चूहे की देह को छोड़कर कोई चीज़ दीवार पर अपनी छाया डालती है, इसका पता अध्यापक गेट्स ने लगा लिया। वे अब यह सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं कि वह चीज़ इन्द्रिय-विशिष्ट है या नहीं—अर्थात् वह सज्ञान दशा में मृतक शरीर से बाहर निकलती है या अज्ञान दशा में। इसके बाद जीवन और मृत्यु के बीच के विस्तृत मैदान की नाप-जोख होगी। इस प्रकार बहुत सम्भव है कि शीघ्र ही आत्मा के अमरत्व का ख़ूब दृढ़ प्रमाण विज्ञान के द्वारा मिल जाय। पर यह भी सम्भव है कि इतने पर भी कोई-कोई सन्देहवादी इस बात को न स्वीकार करें कि आत्मा अमर है—वह कभी नहीं मरता। वे सिर्फ़ इतना ही स्वीकार करेंगे कि मृत्यु के बाद मनुष्य का आत्मा रहता तो है, पर न मालूम कहाँ रहता है और किस तरह रहता है। परन्तु मरने के बाद आत्मा का बना रहना ही उसके अस्तित्व का सबूत है। जब तक उस अस्तित्व का नाश होना कोई साबित न कर दे, तब तक आत्मा के अमरत्व को स्वीकार न करना युक्ति-सङ्गत नहीं हो सकता।

कोई कोई विज्ञान-विशारद शायद यह प्रश्न करें कि क्या कारण है जो चूहा निर्जीव ही दशा में पारदर्शी हो जाता है, सजीव दशा में नहीं होता? इसका उत्तर अध्यापक गेट्स ने

ख़ुद ही दे रक्खा है। उन्होंने एक और जाँच के द्वारा इस प्रश्न को भी हल कर दिया है।

एक कमरे के भीतरी हिस्से में अध्यापक गेट्स ने शीशे की चादर सब तरफ़ लगा दी। फिर उन्होंने उस चादर का लगाव, एक तार द्वारा, ज़मीन से कर दिया। उस तार में उन्होंने एक ऐसा 'गैल्वनोमीटर' (विद्युन्मापक-यन्त्र) लगाया जो आदमी के बदन से निकली हुई बिजली की लहरों को माप सके। इस तरह उन्होंने इस बात को सप्रमाण साबित कर दिया कि बदन के जिस पट्ठे, जिस नाड़ी, या जिस मज्जातन्तु से काम लिया जाता है, उससे बिजली की धारा बाहर बहने लगती है। यदि कोई आदमी अपनी भुजा को ऊँचा उठावे और उसे ताने रहे तो, नीचे लटकाये रखने की अपेक्षा, उससे बहुत अधिक बिजली बाहर निकले। मन से काम लेते समय, अर्थात् किसी बात को सोचते समय, भी बिजली का तेज़ प्रवाह बह निकलता है। पास के वायुमण्डल पर उसका बड़ा असर पड़ता है। उसी की सहायता से लोग दूसरे के मन का हाल बहुधा जान लेते हैं। इस तरह और भी अनेक अद्भुत-अद्भुत बातें वे कर सकते हैं। पट्ठों और मज्जातन्तुओं से काम लेते समय सब जीवधारियों की देह से बिजली की लहरें निकलती हैं। परन्तु अध्यापक गेट्स की निकाली हुई प्रकाशविकिरक लहरें इतनी हलकी और इतनी धीमी हैं कि वे अपने से अधिक प्रकाशमान और गहरी वैद्युतिक लहरों के भीतर नहीं प्रवेश कर

सकतीं। इसी से जब वे सजीव चूहे के पास पहुँचती हैं तब चूहे के बदन से निकलनेवाली लहरों पर वे टकराती हैं और आघात के वेग से दूर फेंक दी जाती हैं। यही कारण है जो इन लहरों का योग होने पर भी जब तक चूहे में जान रहती है तब तक उसमें पारदर्शिता नहीं आती।

[जून १९०५

३—परमात्मा की परिभाषा

वह कौनसी वस्तु है जो (१) एक होकर भी अनेक है; (२) कुछ न होकर भी कुछ है; (३) निराकार होकर भी साकार है; (४) ज्ञानवान् होकर भी ज्ञानहीन है; (५) दूर होकर भी पास है; (६) सूक्ष्म होकर भी महान् है; (७) महासागर में बुलबुलों के समान अनन्त जगत् जिसमें लीन हो जाता है; (८) जो चल होकर भी अचल है; (९) जो सूर्य, चन्द्रमा, तारागण और अग्नि न होकर भी उन सबकी प्रकाशक है; (१०) जो अन्धकारमय होकर भी प्रकाशवान् है; (११) पल होकर भी युग है और युग होकर भी पल है; (१२) अज्ञात होकर भी ज्ञात है; (१३) सूक्ष्म होकर भी सब कहीं विद्यमान है; (१४) सर्वमय होकर भी कुछ नहीं है; (१५) अहङ्कार होकर भी निरहङ्कार है; (१६) प्राप्त होकर भी अप्राप्य है; (१७) जिसमें यह सारी सृष्टि लीन हो जाती है और यथासमय फिर विकास को प्राप्त होती है; (१८) और रूपहीन होकर भी जिसमें हज़ारों हाथ और हज़ारों आँखें हैं ?

इस वस्तु का नाम है ब्रह्म, परब्रह्म, ईश्वर, परमेश्वर अथवा परमात्मा। अब पूर्वोक्त लक्षणों का स्पष्टीकरण सुनिए—

(१) वह एक है, क्योंकि उसका भेद नहीं हो सकता। जितने भेद हैं सब उसी की सत्ता पर अवलम्बित रहते हैं। इसी से वह अनेक-रूपी मालूम होता है। (२) वह कुछ नहीं है, क्योंकि उसकी भावना नहीं हो सकती; इन्द्रिय और मन उसकी कल्पना करने में सर्वथा असमर्थ हैं। वह कुछ इसलिए है, क्योंकि जितने पदार्थ हैं सबकी सत्ता का कारण वही है। (३) उसका कोई रूप नहीं, इसलिए वह निराकार है। पर निराकार होकर भी वह साकार है; क्योंकि वह स्वयं ही आकारहीन बुद्धि या ज्ञान है। (४) जब मनुष्य की तरह कोई सज्ञान चीज़ उसका आश्रय लेती है तब वह ज्ञानवान् मालूम होता है। पर जब मिट्टी या पत्थर के समान किसी अज्ञान चीज़ का उससे सम्बन्ध हो जाता है तब वह ज्ञानहीन जान पड़ता है। (५) वह दूर है, क्योंकि न तो इन्द्रियों ही से वह जाना जा सकता है और न मन ही से। वह अत्यन्त पास इसलिए है कि हमारी आत्मा का एकमात्र आधार वही है। (६) वह सूक्ष्म है; क्योंकि आँखें उसे नहीं देख सकतीं। वह महान् है; क्योंकि संसार की सज्ञानता का एकमात्र कारण वही है।

(७) परमात्मा महासागर के समान है। सूर्य, चन्द्र, तारागण और जगत् उसके बुलबुले हैं। बुलबुले महासागर से जुदा नहीं होते। जिस चीज़ का महासागर है उसी के बुलबुले भी होते हैं। तिस पर भी उनका नाम बुलबुला

रक्खा गया है। अर्थात् महासागर से उनकी भिन्नता दिखलाई गई है। पर भिन्नता का कारण है नाम और आकार। बुलबुला एक ऐसी चीज़ है कि उसका ध्यान करते ही समुद्र का भी ध्यान मन में आ जाता है। वह समुद्र से जुदा नहीं रह सकता; क्योंकि वह उसी का अंश है। इसी तरह यह संसार परमात्मा से भिन्न नहीं। पर यह जो भिन्नता जान पड़ती है उसका कारण केवल नाम और आकार की भिन्नता है। जब बुलबुला नष्ट हो जाता है तब उसका आकार भी नष्ट हो जाता है। इसी तरह अनेक रूप और अनेक आकार का यह जगत् भी परमात्मा में लीन होकर नष्ट हो जाता है।

(८) वह सर्वव्यापी है; इसलिए वह चलेगा कहाँ? उस पर गति का आरोप करने से जान पड़ता है कि वह चलता है। यह आरोप ही इस भासमान गति का कारण है। (९) वह स्वयं ज्योतिर्मय है। सूर्य, चन्द्रमा और तारागण इत्यादि में जो प्रकाश है वह उनका नहीं। ये व्योमवर्ती पिण्ड एक प्रकार के प्रतिबिम्ब मात्र हैं। उनमें जो ज्योति है वह स्वयं ज्योतिर्मय परमात्मा की ज्योति की छाया है। (१०) उसका ज्ञान ठीक-ठीक नहीं हो सकता; उसकी बातें ठीक-ठीक समझ में नहीं आतीं। इससे वह अन्धकारमय जान पड़ता है। पर उसमें ज्ञान की पराकाष्ठा है; इससे वह प्रकाशवान् कहा जाता है।

(११) काल, अर्थात् समय, मन के अन्तर्गत है। पर, परमात्मा समय के अन्तर्गत नहीं; वह उसके बाहर है। समय

का आरोपमात्र उस पर किया गया है। इसी से वह पल या युग जान पड़ता है। अर्थात् पल या युग के आकार को लोगों ने उस पर आरोपित कर दिया है। जो जीव समय के बहिर्भूत हो जाता है और समाधि की अवस्था में शुद्ध-बोध-स्वभाव परमात्मा का परिचय प्राप्त कर लेता है उसे वह सब कहीं और सब समय में विद्यमान देख पड़ता है। जो समय के भीतर है उसके लिए समय की न्यूनता या अधिकता का ख़याल करना भी ग़लत है। क्योंकि जो समय सुख में थोड़ा जान पड़ता है वही दुःख में बढ़ जाता है। विपत्ति के समय राजा हरिश्चन्द्र को एक रात बारह वर्ष के बराबर बीती थी। (१२) जो चीज़ें मन के अन्तर्गत हैं वही जानी जा सकती हैं। परमात्मा मन की सीमा के बाहर है। इससे संसार की और चीज़ें जिस तरह जानी जाती हैं उस तरह वह नहीं जाना जा सकता। जितनी चीज़ें देख पड़ती हैं उनके ज्ञान के उस तरफ़ भी कुछ ज्ञेय ज़रूर होता है। पुस्तक का ज्ञान होने पर उसे किसने बनाया, कहाँ छपाया और उसमें क्या लिखा, इत्यादि बातें फिर भी जानने को बाक़ी रह जाती हैं। उनके जान लेने पर भी कुछ न कुछ ज्ञेय अवश्य रह जाता है। इन्हीं कारणों से यद्यपि मामूली तौर पर ईश्वर का ज्ञान नहीं होता, तथापि सूक्ष्म विचार करने से उसका ज्ञान ज़रूर होता है; क्योंकि संसार में जो कुछ देख पड़ता है उस सबका आदि-कारण वही है। यथार्थ बात तो यह है कि वही हमारा आत्मा है। वही हमारा

प्राण है। अतएव वह हमारे अत्यन्त निकट है और जितनी चीज़ें हमने जानी हैं उन सबसे अधिक वह जानने लायक़ है। हमारा आत्मा परमात्मा ही का अंश है। फिर, बतलाइए, अपने से अधिक आदमी और किस चीज़ को जान सकेगा ?

आदमियों का विश्वास है कि यह संसार सत्य है; मायामय नहीं। इसी से उनको परमात्मा का ज्ञान नहीं होता। इस झूठे विश्वास का नाश हो जाने पर उसकी प्राप्ति में देर नहीं लगती। परमात्मा की माया के सङ्कोच और विकास ही से संसार का लय और पुनर्जन्म होता है। वेदान्त का सबसे बड़ा सिद्धान्त यही है। यह सिद्धान्त इतने महत्व का है कि इसके आधार पर जितने विरोधी मत हैं सबका समाधान हो जाता है। (१३) परमात्मा का परिपूर्ण ज्ञान न मन ही से हो सकता है और न इन्द्रियों ही से। इसी से वह सूक्ष्म कहा जाता है। पर वस्तु मात्र के अस्तित्व का कारण भी वही है। अतएव इस विस्तृत विश्व में वह सब कहीं विद्यमान है। वह है कहाँ नहीं ? क्या किसी चीज़ का अस्तित्व बिना उसके भी सम्भव है ? (१४) जितने घट मिट्टी के हैं यथार्थ में सब मिट्टी ही है। इसी तरह संसार में जितने आकार-प्रकार और शकल-सूरत के पदार्थ देख पड़ते हैं सब ब्रह्ममय हैं। सब परमात्मा के रूप हैं। अतएव वह सर्वमय है। परन्तु परमात्मा स्वयं आकार-हीन है; वह आकार के बाहर है; उसकी कोई मूर्ति नहीं। अतएव वह

कुछ नहीं है। अर्थात् जिसका कोई आकार ही नहीं उसका कुछ होना किस तरह ध्यान में आ सकता है?

(१५) वह अहङ्कार है; क्योंकि उसे अपने आप का ज्ञान है। यह बात हर घड़ी आदमियों के मुँह से 'मैं' शब्द के निकलने से सूचित होती है। 'मैं' का मतलब है 'अहम्'। वह परमात्मा की विद्यमानता का निर्भ्रान्त सूचक है। पर अहङ्कार होकर भी वह निरहङ्कार है; क्योंकि संसार में ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसका वह विषय हो सके; जिसकी उसे अपेक्षा हो; जिसके जानने की उसे ज़रूरत हो। (१६) अनन्त क्लेश उठाने पर योगियों को परमात्मा का ज्ञान होता है। पर जब उसका ज्ञान हो जाता है तब योगियों को यह मालूम होता है कि उनको कोई ऐसी चीज़ नहीं मिली जो उनके पास पहले ही से न रही हो। उनको उस समय जान पड़ता है कि परमात्मा पहले ही से उनके हृदय में विद्यमान था; वही उनके अस्तित्व का कारण था। परन्तु अविद्या के कारण इतने दिनों तक वे यह समझे थे कि उन्होंने उसे खो दिया है; वह उनके पास नहीं। (१७) प्रलय होना, लीन होना या नाश को प्राप्त होना आदि वाक्यों का तात्पर्य पदार्थों के अत्यन्ताभाव से नहीं। जब सृष्टि का क्षय हो जाता है तब उसका सिर्फ़ रूपान्तर हो जाता है; उसका सर्वथा नाश नहीं हो जाता। जिन चीज़ों की सृष्टि बनी है उनका रूपमात्र बदल जाता है। प्रलय के समय सृष्टि का व्यक्त, प्रकट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष

रूप अव्यक्त अर्थात् अप्रकट अवस्था को पहुँच जाता है। पर उसका बिलकुल विध्वंस नहीं हो जाता। सृष्टि फिर भी बनी रहती है; पर अन्य रूप में उसका बीज परमात्मा में लीन रहता है और उसी से, यथासमय, फिर पहले की तरह जगत् का विकास होता है। (१८) माया की लपेट यदि छूट जाय तो परमात्मा रूपहीन जान पड़ने लगे। जब तक माया है तभी तक वह रूपवान् है। व्यक्ति-विषयक माया की लपेट के साथ वह आत्मा के रूप में और विश्वजनीन अर्थात् संसारात्मक माया के योग से वह ईश्वर के रूप में भासित होता है। पिछली अवस्था में परमेश्वर ही सृष्टिमय जान पड़ता है। जब सृष्टि ही परमेश्वर हुई तब उसमें अनन्त हाथ, पैर और आँखों की क्या कमी?

परमात्मा एक है—अकेला है। अर्थात् वह अद्वितीय है। वही देखता है और वही देखा जाता है। उसके बिना देखना सम्भव ही नहीं। सोने की अँगूठी को गलाकर उसकी शकल बिगाड़ देने से सोना फिर भी बना रहता है। उसी तरह संसार के आकार को बिगाड़ देने से—उसका नाश हो जाने से—उसका सार अंश, अर्थात् परमात्मा, पूर्ववत् शेष रह जाता है। न उसका आदि है, न उसका अन्त है। वह सच्चिदा-नन्द है। संसार मायामय है; वह एक प्रकार का स्वप्न है। उसे कभी सच्चा न समझिए। विद्वान् इस बात को कभी नहीं भूलते। वे संसार को एक विलक्षण ऐन्द्रजालिक खेल सम-

झते हैं। जितने नाम और रूप हैं सबको वे परमात्मा ही में लीन समझते हैं। क्योंकि परमात्मा ही उनका सत्व है; वही उनका सार है। इस तरह की धारणा मन में दृढ़ हो जाने से ईश्वर की अनन्तरूपता ध्यान में आ जाती है। ऐसे महात्माओं की दृष्टि में सूर्य्य, चन्द्रमा और तारागण आदि इस तरह लुप्त हो जाते हैं जिस तरह महासागर में जल-बिन्दु। उनके लिए न जन्म है, न मृत्यु। वे दोनों उनकी दृष्टि में तुल्य हैं। क्योंकि जब वे स्वयं ही आत्मरूप हो गये तब जन्म और मृत्यु का भेद उन्हें क्योंकर मालूम हो सकता है? ऐसे महात्मा आत्मानन्द का अनुभव करते-करते उसी में लीन हो जाते हैं। [योगवासिष्ठ से]

[अगस्त १९०६



४—ईश्वर

(नास्तिकास्तिक-संवाद)

(१)

अमेरिका के संयुक्त-राज्यों में इंगरसोल नाम का एक कट्टर निरीश्वरवादो हो गया है। उसकी दलीलों का खण्डन वहीं के एक पादरी साहब ने किया है। वह प्रश्नोत्तर के रूप में है और पुस्तकाकार में प्रकाशित हुआ है। उसी पुस्तक के मुख्यांशों का आशय इस लेखमाला में व्यक्त किया जाता है।

नास्तिक—आप कहते हैं कि यह सृष्टि ईश्वर की बनाई हुई है। इससे तो यह तात्पर्य निकला कि, किसी समय, अर्थात् सृष्टि-रचना के पहले, सिवा ईश्वर के कुछ था ही नहीं।

आस्तिक—इससे इस प्रकार का तात्पर्य, अर्थ या मतलब हरगिज़ नहीं निकला। अविनाशी ईश्वर अपने कर्म्म को भी अविनाशी कर सकता है। इसलिए, उसका सर्जन, अर्थात् सृष्टि-रचना करने का कर्म्म, भी उसके अस्तित्व के साथ ही अविनाशी हो सकता है। सृष्टि ईश्वर के शाश्वत कर्म्म के साथ है; इसलिए वह भो शाश्वत है। जो आप इस बात को न मानेंगे तो आपको यह भी मानना पड़ेगा कि कोई समय ऐसा भो आवेगा जब सर्व-शक्तिमान् ईश्वर निष्कर्म हो जायगा।

परन्तु इस प्रकार की तर्कना करना पागलपन है। अच्छा, मान लीजिए, कि सृष्टि अनादि नहीं है; तो भी तो आपकी बात सिद्ध नहीं होती। क्योंकि समय की उत्पत्ति सृष्टि के साथ हुई है—समय ही से सृष्टि का अस्तित्व-काल नापा जाता है, जिससे यह प्रमाणित हुआ कि सृष्टि के पहले समय न था। अतएव सृष्टि के पहले, समय के अन्तर्गत, ईश्वर भी न था। पर ऐसा कहना या मानना जल्पना मात्र है। ईश्वर है। उसके लिए न वर्त्तमान काल है, न भूतकाल, न भविष्यत् काल। सब काल एकसाँ हैं। अगर कालसूचक कोई शब्द उसके लिए कहा जा सकता है तो वह शब्द अनादित्व है।

नास्तिक—यदि आपका ईश्वर अनादि है तो वह सृष्टि के पहले कहाँ था और क्या करता था? क्या वह आदि-अन्त-रहित किसी निःसीम खोखले में पड़ा था? क्योंकि आकाश भी तो तब उत्पन्न न हुआ था। और, उस समय, क्या वह बिलकुल बेकार था?

आस्तिक—(क) अगर ईश्वर वहाँ था जहाँ रहने की आप सम्भावना करते हैं तो उस जगह का नाम खोखला नहीं हो सकता। खोखली या पोली वह चीज़ कहलाती है जिसके भीतर कुछ न हो। इस बात को याद रखिए। (ख) ईश्वर कर्म्ममय है। संसार में जितनी आत्माएँ हैं और जितनी कर्म्मशीलता है, उस सबका वह आदि-कारण है। उसी से वे निकली हैं। इसलिए ईश्वर को बेकार या कर्म्महीन—

आलसी—बतलाना उसकी ही नहीं, मनुष्यों की भी प्रकृति से अनभिज्ञता ज़ाहिर करना है।

नास्तिक—बुद्धिमान् के चित्त में दो तर्कनायें उठ सकती हैं—(१) या तो यह कि सृष्टि स्वयम्भूत है अर्थात् आप ही आप उत्पन्न हुई है; (२) या, अगर, उसे किसी ने रचा है तो वह रचनेवाला स्वयम्भूत है। इनमें से दूसरी बात मुशकिल से साबित की जा सकती है।

आस्तिक—अफ़सोस इस बात का है कि आप जो कुछ कहते हैं बहुत थोड़ा कहते हैं। आपको चाहिए था कि आप यह बात साफ़ तौर पर कह देते कि आपकी दूसरी तर्कना में कैसी मुशकिल दरपेश है। दोनों को साबित करने में कौन-कौन से सुबूत आप दे सकते हैं। स्वयम्भू और अनादि स्रष्टा (ईश्वर) मान लेने में तो आपको ज़ियादह मुशकिल मालूम होती है; परन्तु अनादि सृष्टि मानने में कम! आश्चर्य की बात है! अनादि स्रष्टा मान लेने में किसी तरह का व्यतिक्रम नहीं आता; उसे बुद्धि क़ुबूल करती है। परन्तु सृष्टि को अनादि मानने से यह भी मानना पड़ेगा कि एक ही वस्तु में, एक ही साथ, परस्पर-संघातक या संहारक गुण भी रहते हैं। इस बात को अक़्ल क़ुबूल नहीं करती। तर्कशास्त्र के नियमों के यह सर्वथा विरुद्ध है।

दर्शनशास्त्र के आचार्यों का मत है कि सृष्टि न तो अनादि है और न उसे किसी ने बनाया ही है। ईश्वर की

इच्छा मात्र से वह उत्पन्न हो गई है। वह अपना ख़ुद का कोई अस्तित्व नहीं रखती; ईश्वर ही के अस्तित्व का वह एक प्रकार का नश्यमान दृश्य है। इन शास्त्रकारों को आप तुच्छ समझते हैं; परन्तु आपसे तो ये ज़रूर ही ज़ियादह समझदार थे; क्योंकि, इन्होंने ईश्वर को सत्य और जगत् को मिथ्या माना है। जगत् की अपेक्षा ब्रह्म को अधिक बुद्धिग्राह्य मानने में इन दार्शनिकों ने आपसे, और आपके साथी दूसरे नास्तिकों से, विशेष विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता दिखाई है। कान्त नामक दर्शनशास्त्री का मत है कि दो में किसी का अस्तित्व ठीक तौर पर प्रमाणित नहीं हो सकता, जिसका अर्थ यह है कि न जगत् ही अविनाशी है न ईश्वर ही। हीजिल और शोलिंग इत्यादि जर्मनी के तत्त्ववेत्ताओं का सिद्धान्त है कि 'अहं' के सिवा सब अनस्थिर है; 'अहं' से ही सब पदार्थ पैदा हुए हैं। फ़्रांस के तत्ववेत्ता कहते हैं कि जगत् किसी का निर्माण किया हुआ नहीं है; वह ईश्वर के साकार रूप का विकाश-मात्र है। अब ज़रा सोचिए तो सही कि इनमें से कोई भी आपकी ऐसी तर्कना करता है? कोई नहीं। आपका दो में से एक भी सिद्धान्त, या एक भी तर्कना, इनके सिद्धान्तों के अन्तर्गत नहीं। आपने, अभी कल से, इन बातों पर विचार करना शुरू किया है। पर इन विद्वानों ने, मुद्दत हुई, चिरकाल तक इन विषयों का मनन किया। अनेक ग्रन्थ लिखकर इन्होंने अपनी गहन गवेषणा का फल भी प्रकाशित किया है। पर

आप चार ही सतर लिखकर इतनी पण्डिताई दिखाते हैं! ईश्वर के अस्तित्व को मानने और जगत् के अस्तित्व को न मानने में अधिक पण्डिताई है। पर जगत् के अस्तित्व को मानने और ईश्वर के अस्तित्व को न मानने में बहुत कम। आपकी पण्डिताई दूसरे क़िस्म की है।

नास्तिक—सच तो यह है कि ऐसे विषयों से सम्बन्ध रखनेवाली कोई बात पूरे तौर पर ठीक-ठीक नहीं जानी जा सकती।

आस्तिक—ईश्वर और जगत् से किसी चीज़ के जितने और जिस प्रकार के सम्बन्ध हैं, चाहे वे सम्बन्ध आकस्मिक हों चाहे स्वाभाविक, उन सबको जान लेना उस चीज़ को पूरे तौर से जान लेना है। जिसके ज्ञान की सीमा नहीं है; जिसमें ज्ञान का निरतिशय-बीज है—जो सर्वज्ञ है—वही "ऐसे विषयों" को या और दूसरे विषयों को पूरे तौर पर जान सकता है। हम लोग उनको पूरे तौर पर हरगिज़ नहीं जान सकते; क्योंकि हममें ज्ञान की मात्रा बहुत कम है; हमारा ज्ञान सीमाबद्ध है, निःसीम नहीं। परन्तु जिस चीज़ के विषय में जितना हम जानते हैं उतने को ठीक-ठीक जानने में हमारा यह सीमाबद्ध ज्ञान किसी प्रकार प्रतिबन्धक नहीं हो सकता। अपनी अल्पज्ञता के कारण हम यह तत्काल नहीं जान सकते कि किसने, किस जगह, किस दिन, किस प्रकार हमारी जेबघड़ी को बनाया; परन्तु हम ठीक-ठीक यह अवश्य जान सकते हैं कि

यह घड़ी है और यह वक़्त बतलाती है। ईश्वर का पूरा-पूरा ज्ञान हमको नहीं; परन्तु इस बात का ज्ञान हमें ज़रूर है कि वह है; उसके अस्तित्व में हमको कोई शङ्का नहीं।

नास्तिक—जिसका पार नहीं, जिसकी सीमा नहीं, उसकी बाबत जो कुछ हम जानते हैं उसकी सीमा निहायत ही थोड़ी हो सकती है। परन्तु जितना हम जानते हैं—चाहे वह बिलकुल ही कम क्यों न हो—सबको एक सा हक़ है कि वह, उसके विषय में, सच्चे दिल से, अपने ख़याल ज़ाहिर करे।

आस्तिक—ख़ूब कहा! बजा फ़रमाया। अब यह भी फ़रमाइए कि क्या किसी मनुष्य को यह भी मजाज़ है कि वह उस चीज़ की बाबत भी लम्बी-चौड़ी तक़रीर करे जिसका ज्ञान उसे बिलकुल ही कम है? सच्चे दिल से अपने ख़याल ज़ाहिर करने के लिए सबको बराबर अख़्तियार है। परन्तु हर आदमी को, हर वक़्त, हर चीज़ की बाबत सच्चे दिल से भी अपने ख़याल ज़ाहिर करने का अख़्तियार नहीं; क्योंकि अगर और कुछ नहीं, तो लोकलज्जा का डर ज़रूर है। आदमी का दिल चाहे जितना सच्चा हो, न वह उसके ख़याल की सचाई को साबित करता है और न उस सचाई की विशेषता ही को बढ़ाता है। अगर ऐसा होता तो बरेली के पागलख़ाने के पागल सबसे बड़े तर्कशास्त्री और सत्यवक्ता होते; क्योंकि अपने ख़यालात ज़ाहिर करने में उनसे बढ़कर और किसी

का दिल सच्चा नहीं ! ख़याल की योग्यता, उसकी सत्यता, अर्थात् उसके याथार्थ्य, पर अवलम्बित रहती है; ख़याल करनेवाले की सचाई पर नहीं। आया आपकी समझ में ? जब किसी आदमी पर कोई इलज़ाम लगाया जाता है तब वह अकसर यह बहाना बतलाकर अपने को उससे बरी करना चाहता है कि इस काम को मैंने सच्चे दिल से किया; इसमें कोई बुराई मैंने नहीं समझी। अब आप ही कहिए कि अगर इस तरह ख़याल करनेवाले की बात उसके दिल के सच्चे होने का सबूत मान ली जाय तो गवर्नमेंट को जेल की हज़ारों इमारतें ख़ाली करना पड़ें या नहीं ?

सच्चे दिल से किसी बात को कहने के हक़ से एक और हक़ तअल्लुक़ रखता है। उस हक़ के मुताबिक़ हर आदमी को लाज़िम है कि वह देखे कि कहने के मुवाफ़िक़ वह बरताव भी करता है या नहीं। किसी बात को कहने के हक़ के साथ कहनेवाला अगर इस हक़ का ख़याल नहीं करता तो हम उसकी बहस को प्रलाप मात्र समझते हैं। हमको आशा है कि आप ऐसी जल्पनामूलक बहस का हक़ दिये जाने का दावा नहीं करते। तो यह लाज़िम हुआ कि जो ख़यालात आप ज़ाहिर करें ठीक उन्हीं के मुताबिक़ आप अपना बरताव भी रक्खें। अब आप कृपा करके "सच्चे दिल से" सोच जाइए कि आपका कर्म्म आपके ख़यालात के अनुकूल होता है या प्रतिकूल।

नास्तिक—यह कहने से काम न चलेगा कि यह जगत् बनाया गया है; इसलिए इसका बनानेवाला होना ही चाहिए।

आस्तिक—क्यों नहीं ? आप ही तो फ़रमाते हैं कि हर आदमी को "सच्चे दिल से" अपने ख़याल ज़ाहिर करने का अख़तियार है। अगर किसी का ख़याल ऐसा ही हो तो ?

नास्तिक—इसका सबूत चाहिए कि यह दुनिया रची गई है, निर्माण की गई है, बनाई गई है।

आस्तिक—ज़रूर चाहिए। वेदान्त आदि जितने दर्शन-शास्त्रों में इस विषय का विचार किया गया है उन सबमें इस बात के एक नहीं अनेक सबूत हैं। आपको तो तार्किक होने का शायद बहुत बड़ा घमण्ड है; फिर आप ही कहिए कि सबूतों पर स्याही फेर देने ही से क्या उनका खण्डन हो सकता है ? आपका फ़र्ज़ था कि आप उन सबूतों की जाँच करते और जाँच करके उनको ग़लत साबित करते। यह तो आपसे हुआ नहीं; पर यह आपने छूटते ही कह दिया कि "सबूत चाहिए"। जैसे, आज तक, इस बात का कोई सबूत दिया ही न गया हो। अगर वे सबूत आपको मालूम थे तो आपको लाज़िम था कि "सच्चे दिल" से आप उनका खण्डन करते। अगर न मालूम थे तो हमसे, या और किसी से, पूँछकर उनको जान लेने में क्या कोई लज्जा की बात थी ? जानकर तब आपको जिह्वा-चापल्य करना था।

तत्ववेत्ताओं ने सैकड़ों जगह पर लिखा है कि यह संसार-चक्र जिस नियम और जिस क्रम से चल रहा है उसको देखकर यह बात दृढ़ता से कही जा सकती है कि इसका बनानेवाला कोई ज़रूर है। इसका आपने जवाब ही नहीं दिया। तर्क-शास्त्र के नियमानुसार ये सबूत तब तक अचल हैं जब तक आप इनको ग़लत नहीं सिद्ध करते। यह आप तर्क द्वारा कीजिए; व्यर्थ के बकवाद और प्रलाप द्वारा नहीं।

नास्तिक—यह कहना ठीक नहीं कि सृष्टि क्रमानुकूल चल रही है, इसलिए इसका स्रष्टा अनादि और अविनाशी होना ही चाहिए।

आस्तिक—ज़रूर; इस तरह सिर्फ़ कह देने ही से काम नहीं चलेगा। सबूत देना पड़ेगा। जैसे आप बे-सबूत के सैकड़ों बातें कहते चले जाते हैं वैसे दूसरे नहीं कहते। दर्शन-शास्त्र के पारगामी पण्डितों ने, अनेक बार, इस बात की पुष्टि में प्रमाण दिये हैं। उनकी दलीलें इतनी मज़बूत हैं कि जब तक आप उनका सप्रमाण खण्डन नहीं करते तब तक स्रष्टा का अनादित्व और अविनाशित्व एक तिल भर भी कम नहीं होता।

नास्तिक—यह उक्ति कि सृष्टि की उत्पत्ति अर्थात् उसका सबसे पहला उद्भव होना ही चाहिए, पर स्रष्टा के लिए यह बात आवश्यक नहीं, पहले दरजे की मूर्खता है।

आस्तिक—हमारा ख़याल बिलकुल इसका उलटा है। हम समझते हैं कि ऐसी उक्ति तर्कविद्या के सबसे ऊँचे दरजे

का प्रकाशमान नमूना है। लेकिन, जान पड़ता है कि जिस बात के खण्डन करने की हुज़ूर कोशिश कर रहे हैं उसके लगाव ही को आप भूल गये हैं। ठीक रास्ते पर आ जाइए। अपने तर्क की तलवार को ज़रा तेज़ कर लीजिए। न हमने और न किसी दार्शनिक ने आज तक यह कहा है कि यह सृष्टि किसी समय आदि अवस्था में थी। जो कुछ कहा है वह यह है कि इसका नक़शा अर्थात् 'प्लैन' या 'डिज़ाइन' परमेश्वर के मन में, अनादि काल से, वर्तमान था। यह सारा जगत् जगदीश्वर की अनादि भावना का साकार रूप है। ईश्वर के सर्जन-कर्म्म द्वारा, यथासमय, इसने विकाश पाया है। हमारी राय में, यह कहना कि इस संसार का नक़शा किसी समय पहले-पहल बनाया गया था, मनुष्य का बहुत बड़ा पागलपन है—पागलपन न सही तो मूर्खता ज़रूर है। जब नक़शा अनादि है तब नक़शानवीस—ड्राफ्ट्समैन—के अनादि होने में क्या सन्देह? कोई नहीं कह सकता कि इस सृष्टि का नक़शा कब तैयार हुआ; अतएव यह भी कोई नहीं कह सकता कि इसका बनानेवाला कब पैदा हुआ। जिनकी शक्ति महदूद है, अर्थात् जिनकी शक्ति की सीमा निर्दिष्ट है, उनके कृत्यों के आरम्भ का पता लग सकता है; क्योंकि ऐसे कृत्यों में कर्ता की प्राकृतिक विद्या, बुद्धि और शक्ति की निर्दिष्ट मात्रा अनुस्यूत रहती है। परन्तु हमको ईश्वर की निःसीम शक्ति-मत्ता की तुलना मनुष्य की निःसीम अशक्तता से न करना

चाहिए। आप ऐसी ही तुलना करना चाहते हैं। जान पड़ता है, इस प्रकार की ग़लती से बचना आपके लिए ग़ैर-मुमकिन सा है।

नास्तिक—जब हम किसी घड़ी को देखते हैं तब यह कहते हैं कि—"देखो, यह कैसी अजूबा चीज़ है; इसको ज़रूर किसी ने बनाया होगा।"

आस्तिक—मीमांसकाचार्य्यजी, माफ़ कीजिए। हम ऐसा नहीं कहते। न्यायमुक्तावली, गादाधरी और जागदीशी आदि को जाने दीजिए, जिसने सिर्फ़ तर्कसंग्रह ही पढ़ा है वह भी ऐसा नहीं कहेगा। वह यह हरगिज़-हरगिज़ न कहेगा कि यह घड़ी अजूबा है, इसलिए इसका बनानेवाला कोई ज़रूर है। वह कहेगा कि इसमें बनाये जाने के चिह्न हैं; अथवा इसके बनाये जाने का सबूत है। इसलिए इसको किसी ने ज़रूर बनाया है। घड़ी का अजूबापन सिर्फ़ इस बात को ज़ाहिर करता है कि उसे किसी अच्छे कारीगर ने बनाया है। बस।

नास्तिक—जब हम किसी घड़ीसाज़ को देखते हैं तब यह कहते हैं कि—"देखो, आदमी कैसी विलक्षण और आश्चर्य्य-मय चीज़ है; इसका बनानेवाला कोई ज़रूर होगा।"

आस्तिक—जी हाँ; लेकिन इसलिए नहीं कि वह विलक्षण और आश्चर्य्यमय है। किन्तु इसलिए कि वह "है" और "परिमित ज्ञानवान्" है। यदि आप दार्शनिक पण्डितों की

तरफ़ से कहीं विकालत करने जाते तो आप उनके मुक़दमे का सत्यानाश ही कर डालते।

नास्तिक—जब कोई जान लेता है कि ईश्वर है तब यह कहता है कि—"वह इतना अजीब है कि हरगिज़ किसी का वह बनाया हुआ न होगा।"

आस्तिक—"कोई" ऐसा कहता होगा; हम नहीं कहते। हमारी नज़र में ईश्वर स्वयम्भूत, स्वतोविद्यमान, अनादि और अविनाशी है। इसलिए हम कहते हैं कि उसका बनानेवाला कोई हरगिज़ न होगा। यह तत्ववेत्ताओं की तर्कना-प्रणाली है। आपकी निरर्थक और प्रलाप-पूर्ण प्रणाली से यह प्रणाली सर्वथा भिन्न है।

नास्तिक—हम एक बात आपसे पूछते हैं। क्या आप इसे नहीं क़ुबूल करते कि जितनी अजूबा चीज़ें हैं सब बनाई गई हैं?

आस्तिक—"अजूबा" के लफ़्ज़ का आप इस तरह बार-बार प्रयोग करते हैं जिस तरह कि फागुन के महीने में लड़के बे-ताल-सुर की डफली का प्रयोग करते हैं। आपके इस लफ़्ज़ को सुनकर उतनी ही घृणा पैदा होती है जितनी उस कर्णकटु बाजे की आवाज़ से होती है। जितने पदार्थ हैं सब बनाये गये हैं—यह सिद्धान्त इस भित्ति पर नहीं स्थिर किया गया कि वे पदार्थ अजूबा हैं; किन्तु इस भित्ति पर कि वे अस्तित्व में हैं। उनका अस्तित्व उनके बनाये जाने का प्रमाण है। बालू

की एक कणा, जो वायु से उड़ी-उड़ी फिरती है, स्रष्टा के अस्तित्व का उतना ही सबल प्रमाण है जितना कि यह विस्तृत और अचरज से भरा हुआ सारा संसार। अतएव किसी चीज़ का अजूबापन उसके बनाये जाने का ख़याल चित्त में नहीं पैदा करता; किन्तु उसका अस्तित्व—उसका विद्यमानत्व—उसे पैदा करता है। कृपा करके इस बात को हमेशा के लिए समझ रखिए। अब, फिर, इस तरह बे-सिर-पैर की तर्कना न कीजिएगा।

नास्तिक—सृष्टि के बिना, अनादि काल से स्रष्टा का विद्यमान रहना भी क्या सम्भव माना जा सकता है?

आस्तिक—जी, हाँ। जो स्वतःसिद्ध है, जो अविनाशी है, उसके लिए यह बात सर्वथा सम्भव है। नक़शा बनाने के पहले क्या नक़शा-नवीस विद्यमान नहीं रहता। जो बात यःकश्चित् मनुष्य के लिए सम्भव है वह अविनाशी ईश्वर के लिए सम्भव नहीं! क्या ख़ूब! बड़ी कृपा हो यदि आप लड़कों की सी बातें करना छोड़ दें।

नास्तिक—क्या किसी नमूने के अनुसार आपके अनादि और अविनाशी स्रष्टा की उत्पत्ति नहीं हुई?

आस्तिक—नहीं, कदापि नहीं। इस त्रिलोकी का नक़शा तैयार करनेवाला अनादि है और साथ ही अविनाशी भी है; इसलिए उससे पुराना कोई पदार्थ ही नहीं। फिर नमूना कैसा? अनादि से अधिक अनादि और क्या हो सकता है?

अविनाशी से अधिक अविनाशी या वयस्क और कहाँ पाया जा सकता है ? यह सवाल आपका ऐसा ही है जैसे कोई किसी से पूछे—"क्या कोई चीज़ वृत्त से भी अधिक वर्तुल है ? अथवा क्या कोई चीज़ त्रिकोण से भी अधिक त्रिकोणवान् है ?"

नास्तिक—जगत् में ये जो सैकड़ों भूकम्प होते हैं; और, इस समय, प्लेग से ये जो राशि-राशि मनुष्य काल के गाल में धँसते चले जाते हैं, उसमें तो हमें आपके पराकाष्ठा के ज्ञानी परमेश्वर की नक़शानवीसी का कोई अच्छा नमूना नज़र नहीं आता।

आस्तिक—अगर नहीं नज़र आता तो कोई तअज्जुब की बात नहीं; क्योंकि आपने अपनी बड़ी ही विलक्षण बहस से यह अच्छी तरह साबित कर दिया है कि ऐसे गुरुतम विषय की बाबत जो कुछ आप जानते हैं वह निहायत ही कम है। जब तक आप उस "पराकाष्ठा के ज्ञानी" के नक़शे को न देख लें, अथवा उसे किसी दूसरे से बख़ूबी न समझ लें, तब तक उसमें ऐबजोई करना समझदार आदमियों की नज़र में अपने को हक़ीर बनाना है। एक दिन पञ्जाब मेल विकट वेग से जा रहा था। फ़तहपुर से एक मील इलाहाबाद की तरफ़, एक गाँव के पास, एक फाटक था। वहाँ पर एक देहाती लड़का बड़े ग़ौर से उस वेगगामी मेल के यञ्जिन को, आँख ऊपर किये हुए, देख रहा था। इतने में जलते हुए कोयले का एक ज़र्रा

उसकी आँख में पड़ गया। पड़ते ही उस लड़के की आँख जल उठी। इस पर, तकलीफ़ से बेचैन होकर उसने कहा—"किस बेवकूफ़ ने करोड़ों रुपये ख़र्च करके ऐसी रेल बनाई जिसने मेरी आँख जला दी। इसमें न तो मुझे बनानेवाले की अक़्लमन्दी ही का पता लगता है और न कहीं उसकी उदारता ही का चिह्न नज़र आता है!" कौन कहेगा कि यह बाल-तत्ववेत्ता उसी स्कूल में न पढ़ता होगा जिसमें आपने पढ़ा है? और बड़ा होने पर, ऊँचे चबूतरे पर चढ़कर, वह आप ही की ऐसी वक्तृता न झाड़ेगा?

नास्तिक—जो कुछ हम कहते या पूछते हैं उसका सीधा जवाब दिया कीजिए। आपकी तक़रीर बहुत कड़वी होती है। हम देखते हैं कि, इस दुनिया में, करोड़ों जीवधारी दूसरे जीवों की जान पर बसर करते हैं। अब आप ही कहिए कि जब संसार का नक़शा बना था, या, जब इसका नमूना तैयार हुआ था, तब क्या यह मारकाट और जीवहिंसा वग़ैरह भी उसमें शामिल कर ली गई थी? यदि हाँ, तो अपने "पराकाष्ठा के ज्ञानी" की उदारता की आप ही प्रशंसा कीजिए।

आस्तिक—पहले आप यह फ़रमाइए कि कब और किस जगह हमने टेढ़ा जवाब दिया। करिए कृपा। आप परमेश्वर को भी अज्ञान, पापी और अनुदार साबित करने की जी-जान से कोशिश कर रहे हैं। ईश्वर को भी आप नहीं छोड़ते। ऐसी तक़रीर को आप शायद बहुत मुलायम और

बहुत मधुर समझते होंगे ! विष वमन करके मिठाई पाने के लिए प्रार्थना !!!

जब तक हुज़ूर यह न साबित कर दें कि ईश्वर ने जान-बूझकर इस जगत् को ऐसा बनाया कि करोड़ों जीवधारी दूसरे जीवों की जान पर बसर करें तब तक ईश्वर के खींचे हुए नक़शे को ग़लत बताने, या खींचने-वाले को अनुदार और ज्ञानहीन कहने का मजाज़ आपको बिलकुल नहीं। जीवहिंसा होना ईश्वर की अनुदारता या अज्ञानता का कोई प्रमाण नहीं। इस हिंसा का कारण ईश्वर पर आरोपित करने के पहले उसे साबित करने की उदारता दिखाइए। और के साथ नहीं, तो ईश्वर के साथ तो आपको बे-इन्साफ़ी न करना चाहिए।

जितने पातक हैं उन सबका कारण मनुष्य की स्वतन्त्रता है; और जितने क्लेश हैं उन सबका कारण पातक हैं। शरीर से सम्बन्ध रखनेवाले जितने क्लेश हैं वे सब विशेष करके मानसिक क्लेशों से उत्पन्न होते हैं; और जितने मानसिक क्लेश हैं वे सब परमेश्वर की दी हुई स्वतन्त्रता को बुरे तौर पर काम में लाने से उत्पन्न होते हैं। स्वतन्त्रता स्वयं बुरी नहीं। ईश्वर ने मनुष्य को स्वतन्त्रता ज़रूर दी है; पर इसलिए नहीं कि वह उसका दुरुपयोग करे, किन्तु, इसलिए कि वह उसका सदुपयोग करके सच्चे सुख की वृद्धि करे। परन्तु मनुष्य ने परमेश्वर की दी हुई स्वतन्त्रता रूपी अनमोल वस्तु का बहुत ही बुरी तरह से उपयोग किया। इसका नतीजा यह हुआ

कि जो स्वाभाविक क्रम था उसमें व्यतिक्रम पैदा हो गया; जहाँ सम्पूर्ण शान्ति थी वहाँ अशान्ति ने अपना डेरा डाला। बड़ी कृपा करके ईश्वर ने मनुष्य को स्वतन्त्रता दी; पर मनुष्य ने ईश्वर के साथ विश्वासघात किया। इस कारण जो क्रमभङ्गता, जो बे-तरतीबी, जो अशान्ति उत्पन्न हो गई वह, गोया, उस विश्वासघातकता के लिए मनुष्य को समुचित दण्ड मिला। मालिक जो काम नौकर के सिपुर्द करता है उसके लिए वह उसे पूरा ज़िम्मेदार भी समझता है। इस हालत में नौकर अगर अपना काम ईमानदारी से नहीं करता तो उसे ज़रूर सज़ा मिलती है; और, साथ ही, उसकी बदनामी भी होती है।

स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करने से जो क्लेश उत्पन्न होते हैं उनकी ज़िम्मेदारी परमेश्वर पर नहीं आरोपित की जा सकती। जो लोग, इस विषय में, परमेश्वर को दोष देते हैं वे शराबियों की तरह निरर्थक बकवाद करते हैं। ऐसे आदमियों की तुलना हम उन डाकू-मुजरिमों से कर सकते हैं जो सख़्त क़ैद की सज़ा पाने पर जज को दोषी ठहराते हैं। संसार में दुःख और क्लेश की कमी नहीं; आपदा और यन्त्रणा की कमी नहीं— यह हम ज़रूर मानते हैं। परन्तु सृष्टि का विकाश करते या उसका नक़शा बनाते समय ईश्वर ने उनकी योजना नहीं की।

जो लोग मनुष्य-जीवन को कीड़े-मकोड़ों का सा जीवन समझते हैं और यह ख़याल करते हैं कि शरीर का नाश होते ही आत्मा का भी नाश हो जाता है उनको ये सांसारिक क्लेश

ज़रूर सन्तप्त करते हैं। परन्तु हम ऐसा नहीं समझते। हमारी तुच्छ बुद्धि में मनुष्य को अनन्त काल तक ज़िन्दा रहना है। अतएव यह चन्दरोज़ा ज़िन्दगी उसके लिए गर्भ-वास के तुल्य है; और ये सांसारिक क्लेश उन तकलीफ़ों के तुल्य हैं, जो विदेश से स्वदेश जानेवाले पथिक को, पथ में, उठाने पड़ते हैं। जब अपने प्यारे घर के आराम और आसा-यशों का ख़याल आता है तब इन क्लेशों का बोझ हलका हो जाता है और इनकी तीक्ष्णता जाती रहती है। ईश्वर में विश्वास रखनेवाले इन क्लेशों को धैर्य्यपूर्वक सहन करते हैं और सत्कर्म्म द्वारा अपने कृतापराधों का परिमार्जन करके, मृत्यु के अनन्तर, अनन्त और अविनाशी स्रष्टा में लीन हो जाने की आशा रखते हैं। परन्तु ईश्वर में अविश्वास रखनेवाले, आपके समान, उन्मत्तवत् प्रलाप करते हुए, नाना प्रकार के क्लेशों में, यहाँ, वहाँ और सब कहीं, सदा पच्यमान रहते हैं।

(३)

नास्तिक—आप, और आपके साथी, ईश्वर की न्याय-शीलता का डङ्का बजाया करते हैं। परन्तु इस विस्तारवान् विश्व की तवारीख़ में उसके न्यायी होने के प्रमाण हमें तो नज़र आते नहीं। अगर वह सचमुच ही न्यायी है तो साबित कीजिए।

आस्तिक—यह आपकी कोताह-बुद्धि, या कोताह-दृष्टि, या विवेकभ्रंशता का नतीजा है। मान लीजिए कि पर-

मेश्वर की न्यायशीलता आपकी नज़र में नहीं आती तो क्या आप इससे यह समझेंगे कि वह है ही नहीं—उसका सर्वथा अभाव है ? उसे देख सकने में आपकी अशक्तता क्या यह साबित करती है कि संसार में उसका अस्तित्व ही नहीं ? आप ईश्वर के अपार और सीमारहित न्याय को तौलने के लिए अपनी परिमित यानी महदूद नज़र से जब तराज़ू का काम लेते हैं तब सबसे अधिक सामर्थ्यवान् ईश्वर के निःसीम गुणों को ज़बरदस्ती छीन लेने के इरादे से आप कमर कसते हैं; अपनी समझ के सामने उसकी अलौकिक प्रभुता और पण्डिताई को हेच समझते हैं; यहाँ तक कि उसके पद तक को, उसके स्थान तक को, छीन लेना चाहते हैं ! इस प्रकार के अद्भुत तार्किक पागलख़ानों में मज़बूती से बन्द किये जाते हैं और अनेक कौतूहल-प्रिय मनुष्य रोज़ उन्हें देखने जाया करते हैं। ईश्वर के रूप और गुणों की सीमा नहीं; ईश्वर-सम्बन्धिनी जितनी बातें हैं किसी की हद नहीं; वे सब स्वभाव ही से बे-सीमा की हैं। अतएव, जब उसकी सभी बातों में निःसीमता है तब उसकी न्यायशीलता में भी ज़रूर निःसीमता होनी चाहिए। ईश्वर को अन्यायी कहना, या उसके न्याय की सीमा मुक़र्रर करना, गोया उसके अस्तित्व ही को न मानना है। परन्तु आपकी युक्ति के शब्द ऐसे हैं जिनसे यह ज़ाहिर होता है कि आप ईश्वर के अस्तित्व को क़ुबूल करते हैं। इस-लिए उसके अलौकिक और अतुलनीय न्याय को भी क़ुबूल

करना चाहिए। अतएव, यदि वह न्याय, जो आपकी तर्कना-प्रणाली से भी सिद्ध है, आपको नहीं देख पड़ता तो आपको उसके होने में सन्देह न करना चाहिए; सन्देह करना चाहिए आपको अपनी आँख के सामर्थ्य पर। परन्तु आपके समान, बे-समझे-बूझे, बड़ी-बड़ी बातें कह डालनेवालों की अक़्ल ठिकाने लाना बहुत मुशकिल है।

नास्तिक—जब संसार के महाक्लेशकारक रोग और मृत्यु का, ईर्ष्या, मोह और निर्दयता का, करुणाजनक दुःख और दरिद्रता का स्मरण आता है तब आपके अनुसार, इस जड़-जङ्गम जगत् का नक़शा तैयार करनेवाले आपके "पराकाष्ठा के ज्ञानी" की नक़शानवीसी लोगों की नज़र में बहुत ही भद्दी जँचने लगती है। अशक्त और निर्बल जीवों के कम्पमान मांस के टुकड़ों का सशक्त और बलवान् जीवों के दाँत, नाख़ून और पञ्जों से फाड़ा जाना भी क्या किसी की निःसीम उदारता, अक़्लमन्दी और इन्साफ़ का नतीजा है?

आस्तिक—"लोगों की नज़र में बहुत ही भद्दी जँचने लगती है"! किन लोगों की नज़र में? क्या "लोगों" से आपका मतलब सिर्फ़ आप ही से है? यदि नहीं तो आप अपने "लोगों" की परिभाषा बतलाइए और यथानियम की हुई उनकी जाँच और उसकी यथार्थता के प्रमाण दीजिए। हम नहीं जानते आप कब ठीक तर्क करना सीखेंगे। क्या ऐसी ही शुष्क, नियमहीन और अण्ड-बण्ड उक्तियों से आप ईश्वर

के अलौकिक ईश्वरत्व में दोष लगाना चाहते हैं? इसी तरह के आपके एक और निरर्गल प्रलाप का युक्ति-पूर्ण उत्तर हम दे आये हैं। यह उक्ति भी आपकी वैसी ही है। अतएव हम इसका सविस्तर उत्तर देकर अपना वक्त़ बे-फ़ायदा नहीं ज़ाया करना चाहते। आपकी बातचीत से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि न तो आप ईश्वर-सम्बन्धी कुछ भी ज्ञान रखते हैं और न उसके विश्वरूपी नक़शे ही को समझ सकते हैं। फिर भी आपकी धृष्टता यहाँ तक बढ़ी-चढ़ी है कि संसार के दुःख, क्लेश, मृत्यु, निर्दयत्व और दारिद्र आदि आप ईश्वर के उत्पन्न किये हुए बतलाते हैं! जिस चीज़ को आप जानते ही नहीं, जिसे आप ज़रा भी नहीं समझते, उसमें दोष दिखलाना आप ही से प्रकाण्ड तर्क-पण्डित को शोभा देता है। धन्योऽसि!

नास्तिक—शान्ति के साथ, जो कुछ कहना हो, कहिए। आपके कहने का तरीक़ा बहुत ही बुरा है। सुनिए। ईश्वर को बहुत बड़ा मुन्सिफ़ माननेवाले आपके अनेक साथी भी इस मुशकिल को नहीं हल कर सकते कि अगर ईश्वर न्यायी है तो सांसारिक जीवों को इतना क्लेश क्यों मिलता है। इसी लिए वे परलोक की कल्पना करते हैं और कहते हैं कि वहाँ वह (ईश्वर) इस लोक-सम्बन्धिनी ग़लतियों को दुरुस्त करेगा। अर्थात् जिसने इस लोक में किसी पर ज़ियादती की होगी या और कोई अपराध किया होगा उसे उस लोक में वह सज़ा देगा। कहिए, इसमें आपको क्या कहना है?

आस्तिक—तो अशान्ति से आप बहुत घबराते हैं। पर ापने कभी इस बात का भी ख़याल किया है कि यदि, जैसा ाप समझते हैं, ईश्वर न होता तो इस पृथ्वी पर कितनी अशान्ति दा हो जाती? हमारी आपसे प्रार्थना है कि जीवों के सुख- :ख, न्याय-अन्याय, दयालुता और निर्दयता के सम्बन्ध के ाना भी परलोक यथावत् विद्यमान रहता है। वह पहले भी ा, अब भी है, और आगे भी रहेगा। सुख-दुःखादि के कारण सका अस्तित्व नहीं है। आपका यह इलज़ाम कि ईश्वर के ाननेवालों ने, ईश्वर की न्यायशीलता को सिद्ध करने के लिए, रलोक की कल्पना कर ली है, इस बात को सूचित करता है ; या तो आप स्वदेश और परदेश के प्रतिष्ठित तत्त्ववेत्ताओं के ाचारों से बिलकुल ही नावाक़िफ़ हैं; या आप जान-बूझकर ग़त-बयानी कर रहे हैं। ये दोनों बातें आपके लिए निहा- त ही लज्जाजनक हैं। इन दोनों में से एक बात ज़रूर है। समें सन्देह नहीं। औरों को तत्त्वज्ञान सिखलाने का बीड़ा ठानेवाले में अल्पज्ञता अथवा नावाक़फ़ियत का होना एक कार का जुर्म है। और, अगर किसी बात को जान-बूझ- र उसने ग़लत बयान किया तो ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय में वह ातचीत करने के लायक़ ही नहीं।

परलोक को किसने नहीं माना? जितने अच्छे-अच्छे त्वज्ञानी हुए हैं, फिर चाहे वे जिस देश में हुए हों, और ाहे जिस समय में हुए हों, सबने परलोक पर विश्वास

किया है। यह बात पुराने तत्त्वज्ञानियों में और भी ज़ियादह देखी जाती है। हिन्दू, मुसल्मान, पारसी, बौद्ध, किरिस्तान, चीनी और जापानी तो परलोक मानते ही हैं; मिसर, ग्रीस और रोम के पुराने निवासी तक भी परलोक को मानते थे। बहुत करके एक भी ऐसी पुरानी जाति या सम्प्रदाय नहीं है जिसने सज्ञान होकर पुनर्जन्म या परलोक पर विश्वास न किया हो—फिर चाहे उनका विश्वास कम रहा हो, चाहे ज़ियादह; और चाहे सृष्टि और ईश्वर-सम्बन्धी उनके विचारों में धर्म्मान्धता की मात्रा अधिक रही हो, चाहे कम। मनुष्य-समुदाय ने, अनन्त काल से, परलोक के मानने में शङ्का नहीं की। बढ़े हुए सोनभद्र नद के प्रवाह के समान, मनुष्य जाति की इस प्रचण्ड विचार-परम्परा के विद्यमान रहते, आपको यह कहने की गुस्ताख़ी अथवा बे-अदबी सूझी कि ईश्वर के अस्तित्व के माननेवालों ने, इस लोक में हुई ग़लतियों को दुरुस्त करने का ईश्वर को मौक़ा देने ही के लिए, परलोक की कल्पना कर ली है! क्या ऐसे ही शस्त्रों से आप ईश्वर की सत्ता को माननेवालों के दृढ़तम विश्वास और विचारों को काटना चाहते हैं? आपकी बहादुरी को धन्य! आपकी दिलेरी को धन्य! आपको भी धन्य!

नास्तिक—"न हममें इतनी लियाक़त है और न हमको इस बात का मजाज़ ही है कि हम ईश्वर के न्याय अथवा अन्याय के विषय में कुछ कह सकें"—इस तरह, आप ही

के साथी एक प्रकाण्ड पण्डित कल कहते थे। पर इस तरह टाल-टूल करने से क्या कहीं काम चल सकता है ? आपकी बातचीत बहुत सख़्त होती है। हमारे कहने पर इतना ग़ुस्सा क्यों ?

आस्तिक—सच बात को कहना या क़बूल कर लेना टाल-टूल नहीं कहलाता। हाँ, आप अवश्य टाल-टूल करते हैं; क्योंकि आप अपने "प्रकाण्ड पण्डित" की उक्ति को न तो स्वीकार करते हैं और न उसका सप्रमाण खण्डन ही करते हैं। "प्रकाण्ड पण्डित" ने जो कुछ कहा बहुत ठीक कहा। ईश्वर के न्याय की सीमा नहीं, वह अनन्त है; मनुष्य की बुद्धि की सीमा है, वह सान्त है। जो वस्तु सीमा-सहित है वह सीमा-रहित की इयत्ता को न तो माप सकती है और न तौल हो सकती है। इसलिए यह कहना कि हममें इतनी योग्यता और शक्ति नहीं कि हम ईश्वर की न्यायशीलता पर कुछ कह सकें, बहुत ही समुचित और सत्य है। इस बात को मानना अगर आपको अभीष्ट नहीं तो तर्कशास्त्र के क़ायदे से युक्ति-पूर्वक आपको इसका खण्डन करना चाहिए था। सो तो आपने, जैसा कि आपका धर्म्म या फ़र्ज़ था, किया नहीं; "प्रकाण्ड पण्डित" पर टालमटूल करने का इल्ज़ाम आपने लगा दिया।

नास्तिक—ईश्वर को न हमीं ने देखा है और न आप ही ने। इस सबब से उसका, या उसकी बातों का मनन, या उन पर विचार, नहीं किया जा सकता।

आस्तिक—ख़ूब कहा ! वाह ! माफ़ कीजिए; आप भूलते हैं। पहले "विचार करने" और "निश्चय-पूर्वक कहने" का अन्तर आप ज़रा समझ लीजिए। इन दोनों में इतना मोटा अन्तर है कि छोटे-छोटे लड़के भी उसे जानते हैं; पर, अफ़सोस है, मालूम होता है, आप नहीं जानते। जो चीज़ सीमा-रहित अर्थात् अनन्त है उसके विषय में कोई बात निश्चय-पूर्वक नहीं कही जा सकती; परन्तु, उसका या उसके कुछ हिस्से का मनन, विचार या ग़ौर ज़रूर किया जा सकता है। अनन्त का ख़याल या अनन्त की भावना सान्त कर सकता है; परन्तु उसका पूरा-पूरा पता वह नहीं लगा सकता; उसके विषय में पूरे तौर पर वह कुछ नहीं कह सकता; और पूर्णता के साथ उसके रूप और गुण आदि का निश्चय भी वह नहीं कर सकता। आया ख़याल में ?

नास्तिक—लेकिन, आप लोगों के हज़ारों बरस के पुराने पण्डितों के अनुसार अगर ईश्वर और उसके नियमों की जाँच नहीं की जा सकती तो उसके विषय में मनन और ख़याल करना व्यर्थ है।

आस्तिक—हरगिज़ नहीं। जिसने तर्क-विद्या पढ़ने का इरादा किया है वह अगर उसके सब अङ्ग नहीं पढ़ सकता तो क्या उसके एक दो अङ्ग पढ़ लेना व्यर्थ होगा ? आप ही के सदृश "तर्क-पञ्चानन" पण्डितों का ऐसा ख़याल होगा ! ईश्वर के विषय में मनन करना कदापि व्यर्थ नहीं; तत्सम्बन्धी

थोड़े से भी थोड़ा ज्ञान श्रेयस्कर है। पर, आप यह तो फ़रमाइए कि यह आपने कहाँ सुना कि ईश्वरी नियमों की जाँच नहीं की जा सकती? जहाँ तक हमको ख़याल है, आपने यह सुना है कि ईश्वरी नियमों के बुरे या भले होने की बाबत कोई फ़ैसिला नहीं किया जा सकता। क्या आप "जाँच" और "फ़ैसिला" इन दो लफ़्ज़ों को समानार्थक समझते हैं? आपकी बातचीत से तो यह ज़ाहिर होता है कि इनका फ़रक़ जानने भर के लिए आपका इल्म काफ़ी है। तो क्या आपने जान-बूझकर, अपने मतलब के लिए, "फ़ैसिला" के लफ़्ज़ को "जाँच" से बदल दिया? सचाई को भी कोई चीज़ समझिए।

नास्तिक—जिनको हज़ारों वर्ष हो चुके, जङ्गल में रहनेवाले उन पुराने जङ्गली और नाशाइस्ता पण्डितों की नामुनासिब बातों को, बिना किसी सोच-विचार के, आप क़ुबूल करते चले जाते हैं। परन्तु दूसरे की बात पर आप ज़रा भी विश्वास नहीं करते।

आस्तिक—आपने हम पर अच्छा इलज़ाम लगाया! हम उसे जिस द्वि-वर्णात्मक शब्द से विशेषण भूत करना चाहते हैं, सभ्य समाज में, उसका स्पष्ट उच्चारण नहीं किया जाता। इसलिए हम इतना ही कहते हैं कि वह छठे स्वर से युक्त चवर्ग के चौथे वर्ण से शुरू होता है! नादानी से भरी ना-मुनासिब बातें हम किसी की क़ुबूल नहीं करते; चाहे वे मुर्दा जङ्गलियों की हों, चाहे ज़िन्दा नास्तिकों की। पुराना जङ्गली हो या नया

नास्तिक, उसकी ना-मुनासिब बातें सुनने से हमको नफ़रत है। पुराने जङ्गली की जो बात आपको पसन्द न हो, या जो बात आपको ग़लत जान पड़ती हो, उसे बतलाइए और अपने पक्ष को सप्रमाण साबित कीजिए। तब हम दिखलावेंगे कि किसकी तर्क-विद्या ज़ियादह तेज़ है—शाइस्ता की या ना-शाइस्ता की।

नास्तिक—अच्छा, अब, इस विषय को, कल तक, मुल-तवी रखिए।

(४)

नास्तिक—आपके साथी, बात-बात पर, कहा करते हैं कि सृष्टि की रचना अनादि, अविनाशी और शुद्ध-बोध-स्वभाव ईश्वर ने की है। परन्तु साथ ही वे यह भी कहते हैं कि उस ईश्वर के अस्तित्व का सबूत देने बैठना, समय को व्यर्थ खोना और काग़ज़, क़लम और स्याही को व्यर्थ ख़र्च करना है। लेकिन ऐसी बातों से काम थोड़े ही चल सकता है। सबूत देना चाहिए और काग़ज़, क़लम, दावात का ख़र्च भी उठाना चाहिए। बड़े-बड़े आलिम और अक़्लमन्द इन्हीं सबूतों की खोज में हैं।

आस्तिक—यह बहुत सच है कि उन सबूतों को, यहाँ, फिर से देना व्यर्थ कालातिपात करना है। व्यर्थ इसलिए, क्योंकि, किसी ने उनका युक्तिपूर्ण और सशास्त्र खण्डन ही नहीं किया। जान पड़ता है कि आप उन सबूतों से बिल-

कुल वाक़िफ़ नहीं; इसी से आप उन्हें जानना चाहते हैं। बड़े-बड़े आलिमों और अक़्लमन्दों ने उन सबूतों को ब-ख़ूबी जाना है; उन पर विचार किया है— नहीं, चिरकाल तक, उनका मनन भी किया है; और, आख़िर को, वे उनकी यथार्थता पर यहाँ तक क़ायल हो गये हैं कि उन्होंने उनको मान भी लिया है। वे लोग, अथवा यों कहना चाहिए कि यह सारी दुनिया, आपसे मुत्तफ़िक़ नहीं है; उनकी राय आपकी राय से नहीं मिलती। क्या आप यह समझते हैं कि आप इन सबूतों को नहीं जानते, इसलिए, दर्शनशास्त्र के पहुँचे हुए पण्डित भी नहीं जानते, अथवा, आपको इन सबूतों का पता नहीं मिला, इसलिए "बड़े-बड़े आलिम और अक़्लमन्द" उनका पता लगाने की अब तक कोशिश ही कर रहे हैं? यह आपकी सरासर ग़लती है; और बहुत बड़ी ग़लती है। आपके कहने में एक ध्वनि भी है। वह यह कि आप भी "बड़े-बड़े आलिम और अक़्लमन्द" आदमियों के साथ एक ही किश्ती पर सवार हैं। आपने अपना गौरव ख़ूब बढ़ाया! बे-समझ को समझाना और भूले हुए को रास्ते पर लाना पुण्य का काम है। इस कारण, समय के व्यर्थ जाने और काग़ज़ पर क़लम को रगड़ने का ख़याल न करके, उस अनन्त ज्ञानवान् परमेश्वर के अस्तित्व का बहुत ही संक्षिप्त सबूत देकर आपके मग़ज़ में भरी हुई नास्तिकता की बू को हम हटाने की कोशिश करना चाहते हैं। ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में

जो दलील हम पेश करने जाते हैं वह तार्किकों की ऐसी दलील होगी—भक्तों, कर्म्मकाण्डियों या योगियों की ऐसी न होगी। क्योंकि "बड़े-बड़े आलिम और अक़्मन्द" लोग दूसरी तरह की दलीलों को क्यों सुनने लगे? हमारी दलील इस तरह की है—

आपको ईश्वर के अस्तित्व में शङ्का है। अच्छा हम आपको अनुमति देते हैं कि जितनी चीज़ों के अस्तित्व के विषय में आप चाहें शङ्का करें। परन्तु शङ्का करते-करते कहीं तो आपकी शङ्का ठहरेगी; कहीं पर तो आपको निःशङ्कता प्राप्त होगी। जहाँ आपको ज़रा भी निःशङ्कता प्राप्त हो वहां आप ठहर जाइए और इस बहस को दिल लगाकर सुनिए। शङ्का हमेशा ज्ञान से उत्पन्न होती है; केवल ज्ञानवान् व्यक्ति ही शङ्का कर सकता है। शङ्का करने के लिए उतने ही ज्ञान की ज़रूरत पड़ती है जितने की कि विश्वास करने के लिए पड़ती है। स्वीकार अथवा अस्वीकार के लिए भी ज्ञान की एक सी ज़रूरत रहती है। इसलिए शङ्का की अनन्तता का होना सर्वथा असम्भव है। यह नहीं हो सकता कि किसी को सब बातों में शङ्का ही शङ्का हो। एक-आध चीज़ के विषय में वह अवश्य ही शङ्काहीन होगा। क्योंकि शङ्का अगर ज्ञान के अस्तित्व में शङ्का करने चलेगी तो उसे ख़ुद अपने भी अस्तित्व में शङ्का करना पड़ेगा। कोई अपनी शङ्का की शङ्का नहीं कर सकता। जब वह शङ्का करता है तब वह जानता है कि वह शङ्का कर रहा है। इसलिए, कम से कम, एक बात अवश्य ऐसी है

जिसकी वह शङ्का नहीं करता। वह बात वही उसकी शङ्का है। तात्पर्य्य यह कि वह अपनी शङ्का के अस्तित्व को ज़रूर मानता है; उसमें वह कोई शङ्का नहीं करता। जिसके ज़रिये से शङ्का की जाती है उस ज्ञान की शङ्का करना मानों शङ्का के अस्तित्व में शङ्का करना है; क्योंकि ज्ञान के बिना न शङ्का ही हो सकती है और न विश्वास ही हो सकता है। इसलिए ज्ञान का अस्तित्व मानना ही पड़ेगा; बिना उसके माने बचाव नहीं। बिना ज्ञान के ज्ञान का अभाव या अनस्तित्व भी नहीं जाना जा सकता। और ज्ञान से ज्ञान का अनस्तित्व मानना स्वतः विरोधी है; ज्ञान के अनस्तित्व की बात ही गोया उसके अस्तित्व को दृढ़ता से सिद्ध करती है। अतएव जहाँ तक आपकी इच्छा हो आप शङ्का कीजिए; पर ज्ञान का अस्तित्व आपको मानना ही पड़ेगा; क्योंकि, बिना ज्ञान के शङ्का नहीं हो सकती।

अच्छा, तो, अब यह सिद्ध हो गया कि शङ्का करनेवाले का ज्ञान का अस्तित्व मानना पड़ता है। जब ज्ञान का होना उसने मान लिया तब उसकी सत्ता के लिए—उसके अस्तित्व के लिए—जो कुछ दरकार है उसे भी मान लेना पड़ेगा। जब आप किसी बात को .कुबूल करते हैं तब, उसके साथ, ज़बरन्, आपको उन सब बातों को भी .कुबूल करना पड़ता है जिनके कारण वह बात वैसी होती है जैसी कि वह है; और जिसके बिना उसको वह रूप न प्राप्त होता जैसा कि उसे प्राप्त हुआ

है। बिना ज्ञेय (ख़याल में आने के क़ाबिल), या किसी ऐसी चीज़ के जो ख़याल में आ सके, ज्ञान समझ में नहीं आ सकता; वह बुद्धि का विषय नहीं हो सकता; उसको बुद्धि नहीं ग्रहण कर सकती। बिना ज्ञेय के ज्ञान हो ही नहीं सकता। इसलिए ज्ञान को मान लेने से ज्ञेय को भी मान लेना पड़ता है। अतएव ज्ञेय एक ऐसी चीज़ है जो ज्ञान की उद्भावक या उत्पादक है; जो ज्ञान का आदि कारण है; जो सब पदार्थों से अधिक सारवान् और सत्तावान् है। इससे यह अर्थ निकला कि ज्ञेय का कोई कारण नहीं; वह स्वतः सिद्ध और स्वतः सत्तावान् है। अतएव ज्ञान का एक-मात्र आधार और बाहर की सारी कारणीभूत उपाधियों से रहित अकेला वही सत् पदार्थ है। जितने असत्, अर्थात् कारण-विशिष्ट पदार्थ हैं उनकी ख़ुद कोई सत्ता नहीं; इसलिए वे बुद्धि का विषय ही नहीं हो सकते। ज्ञान और बुद्धि के द्वारा उनका अस्तित्व ही नहीं ग्रहण किया जा सकता। जिस चीज़ का अस्तित्व है या जो चीज़ सम्भव है, उसकी सत्ता या सम्भवता उस आदि कारण की, उस स्वयम्भूत, स्वतः सत्तावान् सत् पदार्थ ही की शक्ति से जानी जा सकती है। यदि उस सद्वस्तु की शक्ति, सत्ता या संयोग उससे खींच लिया जाय तो वह अभाव को प्राप्त हो जाय; उसका अस्तित्व ही जाता रहे; वह कुछ चीज़ ही न रहे। इसलिए उसका ज्ञान ही न हो सके; उसको बुद्धि ग्रहण ही न कर सके; क्योंकि, जो चीज़ है ही

नहीं वह किसी प्रकार समझ में नहीं आ सकती। इन कारणों से ज्ञान की असलियत या आधार के लिए ज्ञेय की ज़रूरत है। उसकी सत्ता किसी तरह नहीं अस्वीकार की जा सकती; उसे क़ुबूल करना ही पड़ता है। और क़ुबूल करने के साथ यह भी क़ुबूल करना पड़ता है, कि वह दरहक़ीक़त ऐसी वस्तु है जिसकी सत्ता का नाश नहीं होता—पानी न रहने से भी उसकी पानीपन-रूपी सत्ता का अत्यन्ताभाव नहीं होता; उसका ज्ञान बना ही रहता है। वह ज्ञेय, वह सद्वस्तु, वह असल सत्तावान् पदार्थ या तो अविनाशी, अतएव शाश्वत, होता है; या आकस्मिक, अतएव संयोगी होता है।

इस संसार में जो कुछ है उसकी सत्ता का विचार करने से यह सूचित होता है कि या तो वह स्वतः सिद्ध, अनादि और अविनाशी है; या आकस्मिक और संयोगी है; अतएव वह दूसरे के आधार पर स्थित है; ख़ुद अपनी कोई सत्ता नहीं रखता। अगर आप पदार्थों की अनादि और अविनाशी सत्ता को मानते हों तो उस सत्ता की शक्ति के रूप में आप ईश्वर को मानते हैं; फिर आप उसे चाहे जिस नाम से पुकारें। और अगर आप यह नहीं मानते तो आकस्मिक और संयोगी पदार्थों की आधारभूत एक दूसरी सत्ता को मानना पड़ेगा। क्योंकि उसके बिना कोई पदार्थ अस्तित्व में नहीं आ सकता। बिना आधार के आधेय रही नहीं सकता। अतएव इस हालत में भी आपको एक असल सत्ता अर्थात् ईश्वर मानना

ही पड़ेगा। इससे सिद्ध है कि, हर हालत में, एक अविनाशी शक्ति को बिना स्वीकार किये आप किसी पदार्थ के अस्तित्व को नहीं स्वीकार कर सकते। ईश्वर अनादि, अजन्मा और अविनाशी है। अतएव प्रत्येक वस्तु की असल सत्ता या शक्ति को स्वीकार करने में आप ईश्वर को स्वीकार करते हैं। जितने पदार्थ हैं उनको जानने के लिए ज्ञान दरकार है; और जब कभी ज्ञान काम में लाया जाता है, ज्ञेय कभी उससे अलग नहीं रहता। इससे सिद्ध है कि जितने ज्ञान के काम हैं सबमें ज्ञेय-स्वरूप ईश्वर की सत्ता जागरूक है। उसके अस्तित्व को न स्वीकार करना ख़ुद अपने अस्तित्व को न मानना है। कहिए, आप अपने अस्तित्व को मानते हैं या नहीं?

नास्तिक—उक्ति मात्र ही से तर्क-शास्त्र का काम नहीं चल सकता; कह देने ही से कोई बात सिद्ध नहीं हो जाती।

आस्तिक—तो तर्क-विद्या के विषय में आपकी इस ऊपर कही हुई उक्ति से भी काम नहीं चल सकता। आपने कब अपने कहने को सप्रमाण सिद्ध किया? मगर, जान पड़ता है कि, आप तर्क-शास्त्र के मानी ही नहीं जानते, आप यही नहीं समझते कि तर्क-शास्त्र कहते किसे हैं। बिना उक्ति के तर्क हो ही नहीं सकता; तर्कविद्या की दीवार उक्तियों ही के ऊपर उठती है। उक्तियों ही के आसरे तर्क-शास्त्र की इमारत तैयार होती है और एक खण्ड के ऊपर दूसरा खण्ड बनता चला जाता है। तर्क-शास्त्र उक्तियों ही से सिद्धान्तों को स्थिर करता

है। उसको इस बात की ज़रा भी परवा नहीं कि उक्ति सच्ची है या झूठी; जैसी उक्ति होती है उसके अनुसार ही वह फल की सिद्धि दिखला देता है। इससे तर्क-शास्त्र का जो मतलब आप समझते हैं वह उसका बिलकुल उलटा है। तर्क को सिर्फ़ उक्तियों से मतलब रहता है, और किसी से नहीं। आपने शायद अपने मन में "विचार" और "तर्क" इन दो शब्दों को आपस में गड्ड-बड्ड कर दिया है; इनके अर्थभेद को आपने नहीं समझा। इसी से आपने यह, इतनी बड़ी, ग़लती की।

नास्तिक—तर्कशास्त्र क्या दूसरों की राय की कुछ परवा नहीं करता?

आस्तिक—अगर दूसरों की राय "उक्ति" शब्द की व्याप्ति के भीतर आ सकती है तो वह परवा करता है; और ज़रूर करता है; क्योंकि तर्क-विद्या की भित्ति उक्तियों ही पर क़ायम है। आपको कहना था कि विचार, विवेचन अथवा ज्ञान दूसरों की राय की परवा नहीं करता। शब्दों के प्रयोग में आपकी इस बे-परवाही को देखकर हँसी आती है। इस बे-परवाही से यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि तर्क करने का सही-सही तरीक़ा भी आप नहीं जानते। जो मनुष्य ठीक-ठीक तर्क करना जानता है वह अपने ख़यालों को भी ठीक-ठीक ज़ाहिर कर सकता है। परन्तु आपका ऐसा ढीला तार्किक सुननेवाले के मन में सन्देह पैदा कर देता है; क्योंकि वह यही नहीं जान सकता कि आपका मतलब क्या है।

जिसको तर्क-विद्या का इतना कम ज्ञान है कि वह उसका ठीक-ठीक अर्थ तक नहीं जानता उसके साथ ईश्वर के होने और न होने की बाबत बातचीत करना ही बेजा है। इसलिए आप अब अपने घर पधारिए। कुछ दिन सत्संग कीजिए; सद्विद्या पढ़िए; तर्क करना सीखिए; तब आप, इस विषय में, वाद-प्रतिवाद करने के लिए कमर कसिए। अभी आप इस लायक़ ही नहीं। जिस समय ईश्वर, जिसकी हस्ती की बाबत आपको शङ्का है, आपकी ज्ञानलवदुर्विदग्धता को खो देगा उस समय आपको, इस विषय में, तर्क-वितर्क करने की ज़रूरत ही न रहेगी। तथास्तु।

[अगस्त से नवम्बर १९०४ तक

५—कुण्डलिनी

कूजन्ती कुलकुण्डली च मधुरं मत्तालिमालास्फुटं
वाचः कोमलकाव्यबन्धरचनाभेदादिभेदक्रमैः ।
श्वासोच्छ्वासविवर्तनेन जगताञ्जीवो यया धार्य्यते
सा मूलाम्बुजगह्वरे विलसति प्रोद्दामदीपावली ॥

—षट्चक्रनिरूपण

अर्थात् कोमल काव्य की रचना के क्रमानुसार, मत्त-भ्रमर-वत्, मधुर-मधुर तानों का आलाप करती हुई, जो समस्त सांसारिक जीवों के प्राण, श्वासोच्छ्वास के आवागमन द्वारा, धारण किये रहती है, प्रदीप्त दीपावली के समान उस कुण्डलिनी का घर मूलाधार की कमल-रूपी गुहा है।

साधारण मनुष्यों की इन्द्रियों से अतीत इस कुण्डलिनी का वर्णन हम बहुत थोड़े में करना चाहते हैं। परन्तु, इस विषय में कुछ लिखने के पहले, हम यह बतलाना आवश्यक समझते हैं कि योग क्या चीज़ है; क्योंकि कुण्डलिनी केवल योगियों ही की ज्ञानगम्य वस्तु है। योगसिद्ध योगी ही उसका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

चित्त की वृत्ति को रोकने के अनन्तर उसे अपने ही में लय करके, आत्म-स्वरूप के अनुभव में निमग्न हो जाने पर, मनुष्य की जो स्थिति होती है उसे योग कहते हैं। योग के आठ अङ्ग हैं। यथा—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। सच बोलने, चोरी न करने, दूसरे की चीज़ पाने की इच्छा न रखने और वीर्य की रक्षा करने का नाम यम है। सन्तोष, पवित्रता, जप, तप, और ईश्वर के भजन-पूजन को नियम कहते हैं। अष्टाङ्ग-योग की सहायक कुछ विशेष प्रकार की बैठकों को आसन कहते हैं। श्वासोच्छ्वास की स्थिरता को प्राणायाम कहते हैं। चित्त को आत्मरूप में लीन करने और इन्द्रियों को विषयों से पराङ्मुख करने का नाम प्रत्याहार है। जहाँ इच्छा हो वहीं चित्त को स्थिर कर देना धारणा कहलाती है। धारणा के अखण्ड अनुभव का नाम ध्यान है। ध्यान और धारणा का सम्बन्ध हो जाने पर जब मन का लय हो जाता है और किसी दूसरी वस्तु का अनुभव नहीं होता तब जो स्थिति होती है उसे समाधि कहते हैं। वही योग की चरम सीमा है। यम और नियम के मेल को वैराग्यकला; आसन और प्राणायाम के मेल को अभ्यासकला; धारणा ध्यान और समाधि के मेल को संयम; और प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि, इन चारों, के मेल को समाधिकला कहते हैं। अभ्यासकला का नाम हठ-योग और समाधि तथा वैराग्यकला का नाम राजयोग है।

हठयोग में ८४ आसन होते हैं। उनमें से १८ मुख्य हैं। उनमें से भी सिद्धासन और वज्रासन की महिमा विशेष है। मलेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय के बीच में बाँयें पैर का तलवा, शिश्न के ऊपर दाहना पैर और छाती के ऊपर चिबुक अर्थात् ठुड्डी, रखकर निश्चिन्त भाव से दोनों भौंहों के मध्यभाग को देखते रहने का नाम सिद्धासन है। और, मलत्यागेन्द्रिय और शिश्न के बीच की सीवन को बाँयें पैर की ऐंड़ी से दबाकर उस पर दाहना पैर रखकर बैठने का नाम वज्रासन है। इन दोनों आसनों से मूलबन्ध की सिद्धि होती है। इन आसनों के द्वारा सीवन को ज़ोर से दबाने के अनन्तर, मलत्यागेन्द्रिय का आकुञ्चन करके, अपान, अर्थात् अधोगामी, वायु का नीचे जाना रोककर उसे ऊपर ले जाने को योगी मूलबन्ध कहते हैं।

आसनों की सिद्धि हो जाने पर प्राणायाम किया जाता है। वह तीन प्रकार का है—पूरक, कुम्भक और रेचक। श्वास-वायु को नाक के रास्ते से धीरे-धीरे खींचने को पूरक, मस्तक-रूपी कुम्भ में उसे भर रखने को कुम्भक, और धीरे-धीरे उसे नाक ही की राह से छोड़ने को रेचक कहते हैं। १२ सेकंड तक पूरक करके, पचास सेकंड तक कुम्भक करने के बाद, कोई पचीस सेकंड में रेचक करना सध जाने पर कनिष्ठ प्रकार का प्राणायाम होता है। इस प्राणायाम का बारह गुना अभ्यास बढ़ने से प्रत्याहार होता है। प्रत्याहार का

बारह गुना होने से धारणा होती है। धारणा के बारह गुना काल को ध्यान कहते हैं। और ध्यान के बारह गुना अभ्यास को समाधि कहते हैं। अर्थात् एक दिन-रात (२४ घण्टे) तक श्वास-वायु को मस्तक में बन्द रखने का नाम ध्यान और बारह दिन तक अखण्ड ध्यान में मग्न रहने का नाम समाधि है।

योगियों ने १२ चक्रों की भावना की है—६ की शरीर में और ६ की मस्तक में। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और अग्नि—ये ६ चक्र शरीर के भीतर कल्पना किये गये हैं। मस्तक में जो ६ चक्र हैं उनमें से पहला त्रिकुट नामक चक्र दोनों भौंहों के कुछ ऊपर है। और चक्र उसके भी आगे हैं। जो चक्र सबके ऊपर है उसका नाम मेरुशिखर अथवा सहस्त्रार-चक्र है। इन चक्रों के स्थान, रङ्ग, दल, दलों के अक्षर और देवता भी माने गये हैं। उनका विवरण हम अगले पृष्ठ के कोष्ठक में देते हैं—

चक्रों के नाम	स्थान	रङ्ग	दलों की संख्या	दलों के अक्षर	देवता
मूलाधार	गुद	लाल	४	व से स तक	गणेश
स्वाधिष्ठान	शिश्न की जड़	पीला	६	ब से ल तक	ब्रह्मा
मणिपुर	नाभि	नीला	१०	ड से फ तक	विष्णु
अनाहत	हृदय	लाल-पीला-मिश्रित	१२	क से ठ तक	रुद्र
विशुद्ध	कण्ठ	धुँधला-धूसर	१६	अ से अः तक	जीवात्मा
अग्नि	भौंहों का मध्य भाग	बिजली के समान चमकीला	२	ह और क्ष	परमात्मा
मेरुशिखर (सहस्रार)	ब्रह्मरन्ध्र	अवर्णनीय	१०००	ओंकार	एक-अनिर्वचनीय चिन्मय शक्ति

इन चक्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार के कमलों की भावना की गई है और उनके प्रत्येक दल -- प्रत्येक पखुड़ी — में एक-एक अक्षर अङ्कित किया हुआ माना गया है। चक्रों के बीच में, नीचे से ऊपर तक, एक सर्पिणी की कल्पना की गई है। वही कुण्डलिनी है।

योगिजन कहते हैं कि पीठ की हड्डी, अर्थात् मेरुदण्ड या रीढ़, के एक इस तरफ़ और एक उस तरफ़, ऐसी दो छोटी-छोटी नलियाँ या धमनियाँ हैं। उनके भीतर से दो तरह के ज्ञानतन्तु-प्रवाह बहा करते हैं। इन नलियों में एक का नाम इड़ा और दूसरी का पिङ्गला है। इनके बीच में एक और नली है। योगी उसे सुषुम्ना कहते हैं। जिसे वे कुण्डलिनी कहते हैं वह सुषुम्रा के सबसे नीचे के भाग में रहती है। जैसे सर्पिणी कुण्डलाकार बैठती है वैसे ही यह भी अपने स्थान में कुण्डली—घेरे—किये हुए बैठी रहती है। इसकी कुण्डलियों की संख्या साढ़े तीन मानी गई है। इसका आकार तिकोना होता है। योग की साधना करके योगिजन इस सोई हुई कुण्डलिनी को जगाते हैं। उसके जगाने के लिए ही योग का अभ्यास किया जाता है। अभ्यास बढ़ने से कुण्डलिनी जागृत हो उठती है। जागृत होने पर, सर्पिणी जैसे एक जगह पर स्थिर नहीं रहती, वैसे ही यह भी चञ्चलता दिखाने लगती है। सुषुम्रा नाड़ी पोली होती है। इसलिए उसी के भीतर ही भीतर वह सिर की तरफ़ चढ़ने लगती है

और जिन चक्रों का वर्णन ऊपर किया गया है उनका भेद करती हुई, ब्रह्मरन्ध्र तक चली जाती है। जैसे-जैसे वह ऊपर की ओर जाती है वैसे ही वैसे योगियों के सांसारिक बन्धन ढीले होते जाते हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार की अनेक अलौकिक शक्तियाँ उनको प्राप्त होती जाती हैं। यहाँ तक कि शरीर और मन से योगियों का सम्बन्ध बिलकुल ही नष्ट हो जाता है और वे परमानन्द में मग्न हो जाते हैं। इस अवस्था को पहुँचने पर उन्हें परमात्मा का शुद्ध रूप देख पड़ने लगता है।

वज्रासन और सिद्धासन का अभ्यास होने पर मूलबन्ध की सिद्धि होती है। मूलबन्ध सध जाने पर अपान-वायु का अधोगमन बन्द हो जाता है। तब वह ऊपर की ओर जाने लगता है और मार्ग में सोई हुई कुण्डलिनी को ज़ोर से धक्का देता है। उसके धक्कों से वह क्षुब्ध होकर धीरे-धीरे जाग उठती है और अपनी कुण्डलियों को खोलकर सीधी हो जाती है। उस समय सुषुम्ना का द्वार खुल जाता है और प्राण तथा अपान वायु का योग होने से योगी को बहुत कष्ट होता है। जगने पर कुण्डलिनी हृदय के नीचे की वायु को पीकर हड्डी, शिरा और मांस के रस को चूसती है; प्राण-वायु को अधोगामी और अपान-वायु को ऊर्ध्वगामी करती है; और पूर्वोक्त चक्रों का भेद करती हुई ऊपर चढ़ जाती है। यथोक्त रीति से जब योगी इस कुण्डलिनी को सहस्रार चक्र में पहुँचा देता है तब उसे जो आनन्द मिलता है वह अवर्ण-

नीय है। उस चक्र में कुण्डलिनी को स्थिर रखना ही योगी का सबसे बड़ा कर्तव्य है। मोक्ष का साधनीभूत, महातेजों का तेज, योगद्रुम का अद्‌भुत फल, परमानन्द का अधिष्ठान और अनादि तथा अक्षय्य परमात्मसंज्ञक तत्त्व वहीं रहता है। वहाँ रहनेवाले अनिर्वचनीय परमात्मा का अवलोकन करने के लिए ही यह अखण्ड अध्यवसाय किया जाता है।

सुषुम्ना नाड़ी के नीचे के सिरे के पास मज्जा का एक टुकड़ा है। उसका भी आकार तिकोना है। यह बात शरीर-शास्त्र के जाननेवालों ने अपनी आँखों देखी है। उसे ही योगियों ने कुण्डलिनी माना है और जिन भिन्न-भिन्न चक्रों की उन्होंने कल्पना की है वे भी एक प्रकार के मज्जाकन्द ही हैं। मनुष्य के शरीर में सहस्रशः ज्ञानतन्तु फैले हुए हैं। उन सबका सम्बन्ध मस्तक से है। मस्तक ही में ज्ञान का भाण्डार है। वही ज्ञानतन्तुओं की राजधानी है। ज्ञान-तन्तुओं के द्वारा दो प्रकार के ज्ञान-प्रवाह बहा करते हैं। एक ग्राहक, दूसरा अभिसारक। ग्राहक प्रवाह बाहरी ज्ञान को मस्तक में पहुँचाता है और अभिसारक ज्ञान को मस्तक से बाहर ले आता है। पृष्ठरज्जु, मेरुदण्ड, या रीढ़ का ऊपरी भाग गोल है। पर वह सिर के भीतरी भाग से मिला हुआ नहीं है। सिर के भीतर जो एक प्रकार का रस है उसी के ऊपर वह गोला तैरा करता है। ज्ञान को लेने या देने का काम वह वहीं समाप्त कर देता है।

संसार में कई प्रकार की शक्तियाँ हैं। उनमें से विद्युत् अर्थात् बिजली की शक्ति भी एक शक्ति है। यह शक्ति विलक्षण है। जिस शक्ति के बल से किसी पदार्थ के सब परमाणु एक ही साथ, एक ही तरफ़, जाने लगते हैं उसे बिजली की शक्ति कहते हैं। श्वासोच्छ्वास से शरीर के परमाणुओं की धारा या वृत्ति एक ही तरफ़ बहती है। और, मन जब इच्छामय हो जाता है तब ज्ञान-प्रवाह को भी बिजली ही की शक्ति के समान एक शक्ति प्राप्त होती है। अर्थात् जब इच्छा का प्रवाह ज्ञानतन्तुओं में बहने लगता है तब उसमें थोड़ी-बहुत बिजली की शक्ति आ जाती है। शरीर की सब शक्तियाँ जब मन के अधीन हो जाती हैं और एक तरफ़ यथेच्छ प्रवाहित होने लगती हैं तब शरीर एक तरफ़ की बिजली की बैटरी (ख़ज़ाना–कोश) बन जाता है। यह बात प्राणायाम करने से सिद्ध होती है। उससे शरीर की सब क्रियाएँ यथानियम होने लगती हैं और एक प्रकार की शक्ति का प्रवाह बह उठता है।

ज्ञानतन्तुओं ही के मार्ग से सब प्रकार का ज्ञान होता है। इन तन्तुओं का जाल मन ही ने बनाया है। इसलिए योगियों का कथन है कि यदि मन इस जाल को तोड़ दे तो और मार्ग से भी सब बातों का ज्ञान हो सके। वह मार्ग वही पूर्ववर्णित इच्छा-शक्ति, या बिजली का प्रवाह है। ऐसा होने से आप ही आप ज्ञान होता रहेगा और उसे शरीर के अधीन न रहना पड़ेगा।

सुषुम्ना नाड़ी रीढ़ के भीतर होती है। उसका मुँह नीचे बन्द रहता है। यदि वह खुल जाय और उसके भीतर से ज्ञान-प्रवाह बहाते बने तो ज्ञानतन्तुओं से काम लेने की ज़रूरत न रहे। जितने पूर्वज्ञान हैं सब मूलाधार चक्र में रहते हैं। कल्पना कीजिए कि हमने १९०४ की प्रदर्शिनी बम्बई में देखी। उसमें देखे गये पदार्थों का ज्ञान मूलाधार में अङ्कित रह जाता है और भावना या क्रिया की शक्ति से वह फिर नया हो उठता है, अर्थात् प्रतिबिम्बित हो जाता है। उस शक्ति ही का दूसरा नाम कुण्डलिनी है। अब, यदि, मन को स्थिर करके उससे किसी एक ही वस्तु की बहुत अधिक भावना या चिन्तना की जाय तो मूलाधार चक्र सन्तप्त हो उठे और उसकी गरमी से कुण्डलिनी नामक शक्ति जग पड़े। तब इच्छा की प्रबलता से यदि वह सुषुम्ना के भीतर कर दी जा सके और ऊपर की ओर एक के आगे दूसरे मज्जा-चक्र को भेदती हुई ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँच जाय तो विलक्षण बातों का ज्ञान होने लगे। उस समय ज्ञान-प्राप्ति के लिए ज्ञानतन्तुओं की अपेक्षा न रहे। बहुत अधिक अभ्यास बढ़ने से, अनन्त जन्मों में एकत्र की गई शक्ति का समूह यदि, इस तरह, सुषुम्ना के मार्ग से मस्तिष्क तक पहुँचाया जा सके तो मन ज्ञानमय अथवा विद्युच्छक्तिमय हो जाय। जगत् में जितनी वैद्युतिक शक्ति है उसका एकत्व उससे हो जाय। अतएव जो अपने मन को इस स्थिति को पहुँचा दे उसके सर्वज्ञ होने में कोई सन्देह न रहे।

कुण्डलिनी जब ईप्सित स्थान को पहुँच जाती है तब योगी को सारा संसार ही ज्ञानमय देख पड़ने लगता है। कुण्डलिनी को जागृत करने ही से परमात्मज्ञान की देदीप्यमान शिखा उसके सामने जलने सी लगती है। अतीन्द्रिय शक्ति और परम ज्ञान की प्राप्ति होती है। जहाँ कहीं कोई अलौकिक शक्ति देखने में आवे वहाँ समझना चाहिए कि, ज्ञानतः अथवा अज्ञानतः, कुण्डलिनी का थोड़ा-बहुत प्रवेश सुषुम्ना में अवश्य हो गया है। योगियों का ऐसा ही मत है। उनका साक्ष्य इसी प्रकार का है*।

[मार्च १९०५

---

* सङ्कलित

६—निरीश्वरवाद

ईश्वर है अथवा नहीं है, इस विषय में बहुत प्राचीन काल से विवाद चला आता है। निरीश्वरता-विधायक कई धर्म अद्यावधि अपने देश में भी प्रचलित हैं। ईश्वर के अस्तित्व को न माननेवाले बौद्ध, चार्वाक आदि के अनुयायियों से, शङ्कराचार्य के समय तक, यह भारतवर्ष परिपूरित था। परन्तु आचार्य ने जब से उनके धर्म का मूलोच्छेद किया तब से ये लोग, विशेषतः बौद्ध, इस देश का परित्याग करके अन्यान्य देशों को चले गये।

बौद्ध धर्म के अनुयायी ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते। यह धर्म इस समय चीन, जापान, ब्रह्मा और तिब्बत आदि अनेक देशों में सर्वतोभाव से मान्य हो रहा है। इसके अनुयायियों को भी जब हमारे ईश्वरास्तित्व-विधायक धर्म्म के सम्मुख हार मानकर द्वीप-द्वीपान्तरों को प्रयाण करना पड़ा, तब अवश्यमेव हमारे धर्म में कोई विशेषता है और अवश्यमेव ईश्वर का होना उसके न होने से अधिक योग्यता के साथ सिद्ध किया जा सकता है, यही मानना पड़ता है। तथापि, यहाँ पर, हम निरीश्वरवाद के विषय में कुछ लिखना चाहते हैं।

"यह ब्रह्माण्ड स्वयमेव उत्पन्न हुआ है; इसका कर्त्ता कोई नहीं", यह निरीश्वरवादियों का कथन है। "ईश्वर है अथवा

नहीं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता", यह सन्देहवादियों का कथन है। "यह समग्र सृष्टि एक आदि-शक्ति से उत्पन्न हुई है, परन्तु अल्पज्ञ मनुष्यों को उस आदि-शक्ति के स्वरूपादि का ज्ञान सम्भव नहीं", यह अज्ञेयता-वादियों का कथन है। 'जब तक यह देह है तभी तक सुख-दुःखादि का अनुभव होता है, प्राणोत्क्रमण होने के अनन्तर फिर और कुछ शेष नहीं रहता", यह देहात्मतावादियों का कथन है। इन सब मतों में ईश्वर के ऊपर विश्वास नहीं किया जाता।

"नास्तिको वेदनिन्दकः" अर्थात् वेद की निन्दा करनेवाले को नास्तिक कहते हैं। महापण्डित अमरसिंह-कृत कोश में 'नास्तिक' शब्द की इस प्रकार व्याख्या की गई है। वेद हमारे ही देश के धर्म-ग्रन्थ हैं। इससे केवल हमी लोग अथवा हमारे ही धर्म के अनुयायी उनको मान दे सकते हैं; अन्य देशवाले तथा अन्य धर्मावलम्बी नहीं दे सकते। इसलिए इस भूमण्डल में ईश्वर को न माननेवाले सारे लोगों के विषय में 'नास्तिक' शब्द व्यापक नहीं हो सकता। सबके लिए 'निरीश्वरवादी' शब्द का ही प्रयोग करना ठीक है। तस्मात् इस निबन्ध में जहाँ कहीं आवश्यकता होगी हम इसी शब्द को उपयोग में लावेंगे।

अपने देश के प्राचीन निरीश्वरवादियों के सिद्धान्तों का अब हम दिग्दर्शन करना चाहते हैं।

बृहस्पति के मत का अनुसरण करनेवाले निरीश्वरवादियों के शिरोमणि कोई चार्वाकजी हो गये हैं। उनका यह सिद्धान्त है कि पृथ्वी, जल, तेज और वायु के योग ही से शरीर में चैतन्य उत्पन्न होता है और यह चैतन्य शरीर के नष्ट, अर्थात् उन चारों तत्त्वों का विश्लेषण, होने पर नष्ट हो जाता है। ये लोग स्वभाव ही से जगदुत्पत्ति मानते हैं और स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म, परमात्मा किसी को नहीं मानते। इनके मत में आत्मा न ईश्वर का अंश है, न अमर है, और न कर्मजन्य फल ही उसे भोगना पड़ता है। चेतना-विशिष्ट देह ही को ये आत्मा कहते हैं और प्रत्यक्ष प्रमाण को छोड़कर अनुमानादि प्रमाणों को प्रमाण ही नहीं मानते। इनके मत में यज्ञानुष्ठान, अग्निहोत्र, जप, तप इत्यादि सब निष्फल है। "अङ्गनालिङ्गनादि" सुख ही सुख है; और जिस प्रकार हो उस प्रकार उसका उपार्जन करना ही परम पुरुषार्थ है। इस मत के प्रवर्तक बृहस्पतिजी के वचन कई कौतुकावह श्लोकों में सूत्रित हैं, जिन्हें हम सर्वदर्शनसंग्रह से नीचे उद्धृत करते हैं—

* न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः॥ १॥
अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्डनम्।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकाधातृनिर्मिता॥ २॥

---

* न स्वर्ग है, न अपवर्ग है, न पारलौकिक आत्मा है, न वर्णाश्रम-परायण मनुष्यों की क्रिया ही किसी प्रकार फल की देनेवाली है। अग्निहोत्र करना, वेद पढ़ना, त्रिदण्ड संन्यास लेना और भस्म इत्यादि धारण

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गे ज्योतिष्टोमे गमिष्यति ।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥ ३ ॥
मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम् ।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम् ॥ ४ ॥
स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः ।
प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते ॥ ५ ॥
यावज्जीवेत् सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥ ६ ॥

जिस मतवालों की तर्कना-शक्ति इतनी बलवती और विवेक-परम्परा इतनी विशाल थी उस चार्वाक मत का नाम तक, जो इस समय दो-चार दर्शनशास्त्र के जाननेवालों के अतिरिक्त, किसी को विदित नहीं रहा, वह आश्चर्यजनक नहीं ।

करना निर्बुद्धि और पौरुषहीन आलसी लोगों की जीविका सुख से निर्वाह होने के लिए ब्रह्मा ने बनाया है । ज्योतिष्टोम यज्ञ में मारा गया पशु यदि स्वर्ग को जाता है तो यज्ञ करनेवाला यजमान यज्ञ में अपने बाप ही को क्यों नहीं मारकर उसे स्वर्ग भेज देता ? मरे हुए प्राणियों को भी, घर बैठे श्राद्ध करने से, यदि तृप्ति हो सकती है तो एक स्थान से दूसरे स्थान को जानेवालों के लिए इस लोक में 'सतुआ' बाँधना व्यर्थ है । घर में एक बार श्राद्ध कर देने ही से वर्ष भर के लिए छुट्टी हो जानी चाहिए । इतनी दूर स्वर्ग में रहनेवाले प्राणियों की भी यदि दान से तृप्ति सम्भव है तो यहाँ बड़े-बड़े ऊँचे घरों के दूसरे-तीसरे खण्डों में रहनेवाले की उसी प्रकार दान से तृप्ति क्यों नहीं होती ? जब तक जीवन है सुख से रहना चाहिए; और आवश्यकता होने पर ऋण करके भी दूध-मलीदा उड़ाना चाहिए, क्योंकि मरने के अनन्तर भस्म हुए शरीर का इस लोक में पुनरागमन होना किसी प्रकार सम्भव नहीं ।

इस मत के आचार्य देवगुरु बृहस्पतिजी हैं। जान पड़ता है कि अपनी स्त्री तारा के हरण किये जाने पर दुखी होकर उन्होंने उन्मत्तवत् प्रलाप रूप यह शास्त्र बनाया है। हमने पण्डितों के मुख से सुना भी है "तारापहारविकलो विललाप बृहस्पतिः" अर्थात् तारा का अपहरण होने से इस प्रकार बृहस्पति ने विलाप किया है। यह ठीक जान पड़ता है; क्योंकि, लोक में भी स्त्री पुत्रादि के नष्ट होने से लोग विलाप करते हैं और कहते हैं कि ईश्वर है ही नहीं; यदि होता तो हमें इतना दुःख क्यों देता!

अपने-अपने स्वाभाविक गुणों ही से एकत्र हुए द्रव्यों से संसार उत्पन्न हो जाता है; उसका कर्ता कोई नहीं; यह गौतम बुद्ध के अनुयायी बौद्ध लोगों का मत है। पुनर्जन्म, परलोक और आत्मा चार्वाक नहीं मानते; परन्तु बौद्ध मानते हैं। ये लोग अर्थात् बौद्ध मुक्ति को मानते हैं और जीव के अनादित्व के विषय में भी शङ्का नहीं करते। चार्वाक की तरह केवल प्रत्यक्ष ही को नहीं, किन्तु अनुमान को भी ये प्रमाण मानते हैं। यही चार्वाक और बौद्धमत में अन्तर है। परन्तु यह सब माना तो क्या? जैसे घोर निरीश्वरवादी चार्वाक हैं वैसे ही बौद्ध भी हैं। ये ईश्वर और वेद को नहीं मानते।

बौद्धों की चार शाखायें हैं। माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक। जो कुछ अपनी बुद्धि में युक्तिपूर्ण जान पड़े उसी को मानना और उसी के अनुसार व्यवहार

करना बौद्ध लोगों का सिद्धान्त है। "बौद्ध" शब्द का अर्थ भी यही है। चारों प्रकार के बौद्ध सकल भावनाओं को निवृत्ति द्वारा शून्य-रूप निर्वाण मानते हैं। इनके मत में संसार क्षण-भङ्गुर और दुःखमय है। इस संसार की क्षण-भङ्गुरत्व और दुःखमयत्व रूपी भावना करके रागादि के नाश होने ही को ये मुक्ति कहते हैं और सब पदार्थों से मन को खींचकर शून्य तत्त्व का चिन्तन करना मुक्ति का लक्षण बतलाते हैं। संसार को दुःखमय कल्पना करके भी बौद्ध लोग द्वादशायतन पूजा करते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय मिलकर १० तथा ११वाँ मन और १२वीं बुद्धि, यही इनके द्वादशायतन हैं। नाना प्रकार की अर्थोपार्जना करके इनको प्रसन्न रखना, अर्थात् खूब खाना, पीना और मस्त रहना इनकी पूजा हुई। डर क्या है, कर्मजन्य फल का देनेवाला ईश्वर तो मानते ही नहीं, फिर चाहे इन्द्रियों की जितनी सेवा करें। इधर तो संसार की दुःखमय भावना करते हैं, उधर अपने क्षण-भङ्गुर शरीर के अन्तर्गत क्षुद्र इन्द्रियों को आनन्दित रखना ही श्रेयस्कर मानते हैं, यह क्या आडम्बर है कुछ समझ में नहीं आता।

बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का खण्डन-मण्डन हमारे सनातन धर्मावलम्बी आचार्यों ने अनेक स्थानों पर किया है, इसलिए इस अवसर पर इस विषय में इतनी ही चर्चा हम बस समझते हैं। हाँ, इतना और हमको यहाँ पर कह देना चाहिए कि

कलकत्ता-निवासी बाबू मनोमोहन दत्त, एम० ए०, इस मत के निरीश्वरवादी नहीं बतलाते। एक पुस्तक में उन्होंने लिखा है कि गौतम बुद्ध अपने को श्रीकृष्ण की भाँति ईश्वर कहता था और आत्मोन्नति के द्वारा अपने समान होकर 'बुध' हो जाने को ईश्वर-प्राप्ति अथवा मुक्ति मानता था और इसी प्रकार सबको उपदेश देता था। परन्तु जहाँ तक हमने देखा है, अनेक ग्रंथकारों ने इस धर्म को निरीश्वरता-विधायक ही माना है; इसी लिए हमने भी इसे इस प्रकरण में स्थान देना उचित समझा।

जैनधर्म बौद्धधर्म से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। दोनों निरीश्वरवादी हैं। दोनों के सिद्धान्त प्रायः एक ही हैं; जहाँ कहीं भेद है, बहुत कम है। यह ब्रह्माण्ड आदि और अन्त रहित है; इसका बनानेवाला कोई नहीं; न कभी यह उत्पन्न हुआ और न कभी इसका विनाश होगा—यह जैनियों का मत है। इनके मत में रागादि दोष-रहित, सर्वज्ञ, त्रैलोक्य पूजित, अर्थात् यथार्थवादी इनका अर्हन् देव ही परमेश्वर है। ये कहते हैं कि जिस वस्तु को पूर्णतया अथवा उसके किसी एक भाग को कभी किसी ने अपने नेत्रों से नहीं देखा उसका अनुमान भी नहीं हो सकता। इसलिए हमारा सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वस्रष्टा जगदीश्वर जब प्रत्यक्ष नहीं देखा गया, तब उसका अनुमान कैसे किया जा सकता है? तस्मात् ईश्वर कोई नहीं।

बौद्ध आकाश, काल, जीव और पुद्गल ये चार ही द्रव्य मानते हैं, परन्तु जैन लोग धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल ये छः द्रव्य मानते हैं। बौद्धों के समान जैन भी स्याद्वाद और सप्तभङ्गी मानते हैं। यह सप्तभङ्गी और स्याद्वाद तार्किकों के अकाण्ड-ताण्डव के उपयोग में आते हैं। इसलिए यहाँ पर हम इनके नामोल्लेख मात्र ही से सन्तोष करते हैं। "अहिंसा परमो धर्मः" यह इनके धर्म का मूलतत्त्व है। ये लोग चेतन और जड़ दो ही पदार्थ मानते हैं और उनके विवेचन को विवेक कहते हैं। रागादि का त्याग और यह जगत् किसी के द्वारा निर्मित है, इस प्रकार के अविवेक का नाश, जैन लोग अपने जीवन का लक्ष्य समझते हैं। ये परम ज्योतिःस्वरूप जीव ही की भावना को सर्वोपरि मानते हैं और चेतना-विशिष्ट जीव जिसका अंश मात्र है उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा का अस्तित्व तक स्वीकार नहीं करते।

सांख्यदर्शन का अनुयायी यद्यपि कोई पृथक् धर्म इस समय नहीं देखा गया तथापि यह दर्शन निरीश्वरवादी होकर अत्यन्त प्राचीन है और बौद्ध धर्म इसी के तत्त्वों का अवलम्बन करके अद्यावधि इस भूगोल के एक तृतीयांश में व्याप्त हो रहा है। इसके अतिरिक्त सांख्य का बीज भारतवर्ष के अनेक सम्प्रदायों का इस समय भी भित्तिमूलक हो रहा है। इस दर्शन के कर्ता कपिल मुनि हैं।

हरिभद्र सूरिकृत षड्दर्शन-समुच्चय में लिखा है—"सांख्या निरीश्वराः केचित् केचिदीश्वरदेवताः", अर्थात् कोई-कोई सांख्य मतवाले ईश्वर को मानते हैं और कोई-कोई नहीं मानते; परन्तु यह दर्शन विशेषतः निरीश्वरवादी ही के नाम से प्रसिद्ध चला आता है। और सांख्य प्रवचन के प्रथमाध्याय का ६२ वाँ सूत्र—ईश्वरासिद्धेः इसका मूल कारण है। सांख्यकार प्रत्यक्ष प्रमाण के विषय में लिख रहे हैं और कहते हैं कि—

यत् सम्बद्धं सत् तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत् प्रत्यक्षम्।

अ० १, सू० ८६

अर्थात् जिसका सम्बन्ध (सत् विद्यमान) पदार्थ से हो और जिससे बुद्धि की वृत्तियों में तदाकार का ज्ञान हो जाय उसको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। इसमें यह सन्देह हुआ कि योगिजनों को जो प्रत्यक्ष होता है वह चक्षुरादि इन्द्रिय-संयोग-जन्य न होकर भी त्रैकालिक पदार्थों का साक्षात्कार रहता है। इसलिए प्रत्यक्ष का उपर्युक्त लक्षण ठीक न हुआ। इसका समाधान अगले सूत्र में यों है—

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः—

अ० १, सू० ६०

अर्थात् कहा गया लक्षण बाह्य प्रत्यक्ष का है; परन्तु योगियों का प्रत्यक्ष बाह्य नहीं आन्तरिक है; अतः वही लक्षण ठीक है। अब यहाँ पर यह प्रश्न उद्भूत हुआ कि यदि इन्द्रियों का पदार्थों के साथ सम्बन्ध होने ही से प्रत्यक्ष

ज्ञान होता है तो ईश्वर का ज्ञान होना कदापि सम्भव नहीं; क्योंकि उसका किसी इन्द्रिय द्वारा सम्बन्ध नहीं होता, और हम अनुमान भी उसका नहीं कर सकते, क्योंकि अनुमान तो उसी का हो सकता है जिसका कभी किसी वस्तु के साथ संयोग हुआ हो। इस पर सूत्रकार "ईश्वरासिद्धेः" इस सूत्र में यह कहते हैं कि पहले ईश्वर ही सिद्ध नहीं, साक्षात्कार किसका हो सकेगा। प्रमाण द्वारा प्रथमतः ईश्वर का होना सिद्ध कीजिए, तदनन्तर हमारे प्रत्यक्ष लक्षण को सदोष ठहराइए।

"ईश्वरासिद्धेः" इस सूत्र में कही गई ईश्वर की असिद्धि को दृढ़ करने के लिए इसका अगला सूत्र सूत्रकार ने यों लिखा है—

मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः—

अ० १, सू० ९३

अर्थात् ईश्वर न तो मुक्त ही है और न बद्ध ही है, इससे उसकी सिद्धि प्रमाण द्वारा नहीं हो सकती। यदि मुक्त होता तो सृष्टि-रचना के जञ्जाल में क्यों पड़ता और यदि बद्ध होता तो अविद्या के कारण जगदुत्पत्ति कर ही न सकता। यदि इन दोनों स्वभावों से पृथक् कोई विलक्षण शक्तिमान् ईश्वर है तो हो सकता है; परन्तु तर्क द्वारा उसका होना प्रमाणित नहीं हो सकता। इस सूत्र के अर्थ को आस्तिक लोग खींच-खाँचकर अपनी ओर लगाते हैं और कहते हैं कि काकु-न्याय से इसका इस प्रकार अर्थ करना चाहिए कि "ईश्वर बद्ध

और मुक्त दोनों से भिन्न है, इस कारण क्या उसकी सिद्धि न हो सकेगी ?" परन्तु जिस प्रसङ्ग में और जिस प्रकार इन दो-चार सूत्रों की रचना होती चली आई है, उसके अनुसार यह अर्थ युक्तिपूर्ण नहीं जान पड़ता।

अथवा थोड़ी देर के लिए कल्पना कीजिए कि कपिलजी का यह आशय है कि ईश्वर है अवश्य, परन्तु उसके अस्तित्व को प्रमाण द्वारा सिद्ध नहीं कर सकते। तो क्या इस प्रकार की कल्पना करने से सांख्यकार को ईश्वरवादी कह सकते हैं ? हमारी समझ में तो नहीं कह सकते। जो कहता है कि ईश्वर नहीं है वह भी निरीश्वरवादी है; और जो कहता है कि ईश्वर के होने का कोई प्रमाण नहीं, वह भी निरीश्वरवादी ही है। अतः दो प्रकार के निरीश्वरवादी मानने पड़ते हैं; जिनमें कपिल महाराज को दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत समझना चाहिए।

"अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः"—यह सांख्यदर्शन का प्रथम सूत्र है। इसका अर्थ यह है कि तीन प्रकार के दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति को अत्यन्त पुरुषार्थ कहते हैं। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक, ये तीन प्रकार के दुःख हैं। इनके समूलोच्छेदन का यत्न प्रतिपादन करके अपवर्ग प्राप्त करने का उपदेश इस दर्शन का सिद्धान्त है।

यदि कोई शङ्का करे कि यन्त्र, मन्त्र, औषधादि ही से दुःखों की निवृत्ति हो सकती है, सांख्य की युक्तियों का अवलम्बन करके उनके अनुसार उपाय करने की कोई आवश्यकता

नहीं, तो यह शङ्का ठीक नहीं; क्योंकि, एतादृश उपायों से दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति कदापि नहीं हो सकती। एक बार ज्वरांकुश का सेवन करने से ज्वर चला जायगा, परन्तु सम्भव है कि पुनर्वार उसका आगमन हो। अथवा किसी अभिलषित वस्तु की अपेक्षा से हुआ दुःख उस वस्तु की प्राप्ति से जाता रहेगा, परन्तु यह कौन कह सकता है कि पुनर्वार फिर किसी अन्य वस्तु को पाने की इच्छा से फिर भी अन्तःकरण को दुःख न पहुँचेगा? भोजन करने अथवा जल पीने से जैसे बुभुक्षा और पिपासा तत्काल के लिए शान्त हो जाती है, परन्तु कुछ देर में, नियमित समय पर, फिर लगती है, उसी प्रकार यह दुःख एतादृश बाह्योपचारों से अल्प काल के लिए नष्ट हो सकते हैं; उनकी परम्परा नहीं छूटती, उनके फिर भी उत्पन्न होने का सर्वदा भय बना ही रहता है।

यदि यह शङ्का की जाय कि नाना प्रकार के यज्ञानुष्ठान, जप, तप इत्यादि से ही दुःखात्यन्त-निवृत्ति हो सकती है, सांख्य का आडम्बर हमको न चाहिए, तो इस प्रकार की भी शङ्का ठीक नहीं कही जा सकती; क्योंकि शारदीय देवीपूजन, सत्य-नारायण-व्रत तथा तत्पूजन, पार्थिवार्चन और नाना प्रकार के अनुष्ठान आदि से जो दुःख-निवृत्ति होती है वह सर्वकालिक नहीं। इस प्रकार के उपाय अनेक कारणों से फलप्रद ही नहीं होते और यदि मान भी लें कि होते हैं तो ये दुःख की अत्यन्त-निवृत्ति करने में कदापि समर्थ नहीं होते। जब तक इन

कृतियों के द्वारा सञ्चित किया गया पुण्य प्रस्तुत रहता है तब तक अवश्य शान्ति रहती है; परन्तु पुण्य क्षीण होने से फिर भी पहले ही के समान दुःख भोग करना पड़ता है। अतएव यह भी साधन कोई अच्छा साधन नहीं।

एक यह भी शङ्का उद्भूत हो सकती है कि ईश्वर ने जो नैसर्गिक नियम बना दिये हैं उनके प्रतिपालन से दुःखोत्पत्ति की सम्भावना न होगी। नियमों का उल्लङ्घन करना ही दुःख पाने का मूल कारण है। विचार करने से यह शङ्का भी निस्सार जान पड़ती है। प्रथम तो ईश्वरीय नियम ही ऐसे हैं कि सहज ही में उनका उल्लङ्घन हो सकता है; दूसरे उनके उल्लङ्घन करने की इच्छा प्राणियों में सदैव जागृत रहती है। इससे यही अनुमान होता है कि सुख की अपेक्षा अधिक दुःख देने ही का ईश्वरीय उद्देश्य है, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो मादक पदार्थ, जो इतने अनिष्टकारी हैं उनके सेवन की प्रवृत्ति मनुष्यों में क्यों वह उत्पन्न करता, और फिर उत्पन्न करके भी आपाततः तत्सेवन सुखकर क्यों करता? नियम भी कोई-कोई ऐसे हैं कि उनका ज्ञान ही मनुष्यों को नहीं होता। कल्पना कीजिए कि किसी स्थान की वायु दूषित हो रही है, जहाँ जाने ही से कोई न कोई रोग उत्पन्न होने का डर है। अब यदि हम वहाँ जायँ और किसी रोग से ग्रस्त हो जायँ तो हमारे ऊपर बड़ा भारी बलात्कार समझना चाहिए, क्योंकि नियमोल्लङ्घन का ज्ञान न देकर तज्जनित दण्ड देना तो किसी

प्रकार न्याय्य नहीं। हाँ, विधि का न जानना लोक में अपराधी के लिए दण्ड से बचने का कारण नहीं कहा जा सकता—यह सत्य है, परन्तु लौकिक, अल्पज्ञ, न्यायाधीश और सर्वज्ञ, परम दयालु, ईश्वर की समता नहीं की जा सकती। सर्व-साधारण के लिए ऐसे-ऐसे नियमों के सहज ही में जानने का साधन सुलभ न करके निर्दयता से तदुल्लङ्घन का दण्ड देना समुचित नहीं देख पड़ता। सूक्ष्म विचार करने से इसके अनेक कारण बोध होते हैं; परन्तु विषयान्तर होने के भय से उनका उल्लेख हम यहाँ पर नहीं करते।

यदि हमने सारे नियमों का यथोचित परिपालन भी किया तो क्या हमें दुःख न मिलेगा? दुःख फिर भी मिले होगा। वह नहीं छूट सकता। कल्पना कीजिए कि किसी के परम प्रिय, साधु स्वभाव और अति विद्वान् एकमात्र पुत्र है। पुत्र की अभिलाषा पूर्ण करने के हेतु, अथवा भविष्यत् में उसका उत्कृष्ट सम्मान होने और उच्च पद प्राप्त करने से अपने को कृतकृत्य मानने के निमित्त, यदि पिता ने उसे सहस्रशः मील दूर विद्याध्ययनार्थ इँगलैंड प्रस्थान कराया और अभाग्यवश वहाँ उसे कुछ अनिष्ट हुआ, तो कहिए पिता की यन्त्रणाओं का क्या ठिकाना है? उसको जीवित दशा ही में नरक की यातनायें भोग करनी पड़ेंगी। कोई नैसर्गिक नियम उसने नहीं उल्लङ्घन किया, तथापि उसे जो दुःख हुआ उस दुःख से अधिक असह्य और घातक लोक में और कोई दुःख नहीं हो सकता। अब

देखिए, नियमों का उल्लङ्घन किया पुत्र ने, जिससे उसकी मृत्यु हुई; परन्तु दुःख भोग करना पिता को पड़ता है। इस प्रकार के भी दुःख का निवारण एक ऐसे ही दूसरे पुत्र के होने, अथवा कालान्तर में उस घटना को भूल जाने अथवा और किसी अभिलषित वस्तु में मनोनिवेश करने से हो सकता है। परन्तु कौन कह सकता है कि फिर किसी पुत्र अथवा पौत्र के मरने से पुनः-पुनः उसी प्रकार का दुःख न भोगना पड़ेगा ?

हम यह नहीं कहते कि संसार में दुःख ही दुःख है। सुख भी है; परन्तु वह सुख दुःख से इतना मिश्रित हो गया है कि उसे भी दुःख ही कहना पड़ता है। यही सांख्यकार का अभिप्राय है। यह यथार्थ है। संसार अवश्यमेव दुःख का घर है और इस दुःख का समूल और सर्वदा के लिए नाश करना ही परम पुरुषार्थ है। देह-ध्वंस होने से दुःखोच्छेद नहीं होता; क्योंकि सांख्यकार पुनर्जन्म मानते हैं और जन्म-पौनःपुन्य के कारण जरामरणादिज दुःखों की भावना करते हैं, यहाँ तक कि आत्मा के विश्व कारण में विलग्न होने पर भी दुःख का अत्यन्ताभाव नहीं मानते। वे कहते हैं कि जैसे जल में मग्न होने से पुनरुत्थान होता है—"मग्नवदुत्थानात्"—वैसे ही कारण में लीन होने पर भी आत्मा के पुनर्जन्मादि का सम्भव बना ही रहता है। अच्छा, तो क्या किया जाय जिससे दुःख-परम्परा का समूलोच्छेद हो जाय। सांख्यकार कहते हैं कि

अपवर्ग की प्राप्ति ही इस कार्य के साधन का एकमात्र उपाय है। अपवर्ग कहते किसको हैं ?

द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः।

अ० ३, सू० ६५

दोनों, अर्थात् प्रकृति और पुरुष की आपस में उदासीनता हो जाना ही अपवर्ग अर्थात् मुक्ति है। अब प्रकृति और पुरुष क्या है इसका सूक्ष्म परिचय सुनिए—

हमको इस दुःखमय संसार में नाना प्रकार के दुःख भोग करना पड़ते हैं; परन्तु "हम" कौन हैं ? हमारा देह तो "हम" नहीं। सुख-दुःख देह को कदापि नहीं होता; जब, जहाँ और जितना होता है उसी "हम" को होता है। हमारे देह और दैहिक चलन-वलनादि शक्ति के अतिरिक्त हमको और कुछ भी दृग्गोचर नहीं होता। तो क्या यह सुख-दुःखादि शरीर ही को होते हैं ? यदि ऐसा है तो प्राणोत्क्रमण होने के अनन्तर उस देह को सुखादि का अनुभव क्यों नहीं होता ? अथवा जीवित दशा ही में किसी के द्वारा अपमानित होने पर देह को कोई विकार नहीं होता; परन्तु अपमानज दुःख अवश्यमेव होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि हमारा देह "हम" नहीं। देह से स्वतन्त्र जो सुख-दुःखादि भोग करनेवाला है वही "हम" है। यह "हम" हमारा दृग्गोचर नहीं, जिससे यह प्रमाणित होता है कि इस जगत् का कुछ भाग इन्द्रियगोचर है और कुछ इन्द्रियगोचर नहीं।

चक्षुरादि इन्द्रियों का अगोचर और दुःखादि का भोग करनेवाला "हम", "तुम" इत्यादि शब्दों का वाचक आत्मा है। इस आत्मा को सांख्यकार पुरुष कहते हैं। इस पुरुष के अतिरिक्त और जो कुछ जगत् में देख पड़ता है वह प्रकृति है। इन्हीं दोनों की आपस में उदासीनता हो जाना मोक्ष है।

जितना दुःख आत्मा अर्थात् पुरुष को भोग करना पड़ता है सब प्रकृति-जन्य है। बाह्य पदार्थ ही उसके आदि-कारण हैं। साधारण श्लेष्मा से लेकर उग्र सन्निपात, उदावर्त, राजयक्ष्मादि रोग, तथा इष्टजन-वियोगज सन्ताप और अन्यकृत अपमान सब प्रकृति के साथ पुरुष का संयोग होने ही से सहन करने पड़ते हैं। यद्यपि आत्मा प्रकृति से सर्वथैव पृथक् है, तथापि प्रकृति से उसका विलक्षण संसर्ग भी है। स्फटिक और रक्तवर्ण कमल दो पृथक् पदार्थ हैं, परन्तु जब कमल-पुष्प स्फटिक के पास रक्खा जाता है तब वह उसमें प्रतिफलित होकर स्फटिक को भी रक्तवर्ण कर देता है। वास्तव में दोनों पदार्थ एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं रखते और परस्पर स्पर्श तक नहीं करते। यही दशा प्रकृति और पुरुष की है। दोनों यद्यपि देश-व्यवधान-विहित हैं, तथापि प्रकृति ने पुरुष को इतना रञ्जित कर रक्खा है कि वह भी उसके वर्ण का हो गया है और प्रकृति-जन्य दुःख को पाता है। इस प्रकार का संयोग नित्य नहीं। जैसे कमल-पुष्प को स्फटिक के निकट से हटा लेते ही स्फटिक अपने पूर्व वर्ण को प्राप्त हो

जाता है, वैसे ही प्रकृति जब पुरुष को नटी के समान अपना नाच-कूद बतलाकर अन्तर्हित हो जाती है तब पुरुष पूर्ववत् शुद्धस्वभाव शेष रह जाता है, और फिर उसे सुख-दुःखादि की भावना नहीं होती। प्रकृति और पुरुष के सम्बन्ध का विच्छेद ही परम पुरुपार्थ है। यह विच्छेद ज्ञानसाध्य है।

मैं कर्ता नहीं; मेरा इस संसार में कुछ नहीं; मुझमें कोई क्रिया भी नहीं; इस प्रकार की भावना और उसमें निर्भ्रमात्मक विश्वास को ज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान सांख्यदर्शनान्तर्गत कथित तत्त्वों का विवेचन और उनका सतताभ्यास करने से उत्पन्न होता है और कर्माकर्म से प्रकृतिजन्य बन्धन को छुड़ाकर आत्मा को अपने सच्चिदानन्द स्वरूप का साक्षात्कार कराने में समर्थ होता है। हम लोगों ने ज्ञान को मुक्ति और अँगरेज़ों ने ज्ञान ही को शक्ति मान रक्खा है। इसी से एक ही पदार्थ को भिन्न-भिन्न रीतियों द्वारा उसका उपयोग करने से भिन्न-भिन्न फल दृग्गोचर हो रहा है। ज्ञानार्जन द्वारा संसार को दुःखमय जानकर हम लोग विरक्त होते हैं; परन्तु अँगरेज़ लोग तदुपार्जन ही से नाना प्रकार के यन्त्रादि की रचना करते हैं, नूतन-नूतन विज्ञान-तत्त्वों का पता लगाकर नूतन-नूतन विद्या और कला-कौशल प्रादुर्भूत करते हैं तथैव हमारे विरक्त देशवासी जनों को जीतकर उनके ऊपर अपनी सत्ता भी पूर्ण रूप से चलाते हैं।

कारण-परम्परा जिसके आगे नहीं जा सकती, ऐसी मूल प्रकृति को सांख्यकार जगत् का आदि-कारण मानते हैं और सांसारिक पदार्थों को २५ भेदों में विभक्त करते हैं। ये २५ भेद ये हैं—पुरुष, प्रकृति, महत्, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्रा, एकादशेन्द्रिय और पञ्चस्थूलभूत।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश को स्थूलभूत कहते हैं। पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और मन ये एकादशेन्द्रिय हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, तन्मात्रा कहलाते हैं। "हम" इस प्रकार का ज्ञान अहङ्कार है। महत् मन को कहते हैं। प्रकृति और पुरुष का लक्षण हम कह चुके हैं।

सांख्यकार आत्मा को शरीर से पृथक् मानते हैं और देह ध्वंस होने के अनन्तर भी उसका स्थायित्व प्रतिपादित करते हैं, एवं आत्मा का लोकान्तर में पुनः-पुनः शरीर के साथ सम्बन्ध होने से नाना प्रकार के जरामरणादिज दुःखों की कल्पना भी सत्य समझते हैं। प्रकृति से विरक्तता सम्पादन करके दुःखों का समूलोच्छेद करने को वे परम पुरुषार्थ कहते हैं और उसी को अपवर्ग-प्राप्ति का एकमात्र द्वार निश्चित जानते हैं। यही कपिल-सूत्रों का सिद्धान्त है।

निरीश्वरता-विषयक प्रस्ताव में इस मत की अल्प समालोचना बस थी; परन्तु यह दर्शन अति प्राचीन और अत्यादरणीय होने के कारण हमने किञ्चित् विस्तार से इसकी आलोचना की। यह इसी दर्शन का प्रभाव है कि हम लोगों

के हृदय में यह बात भरी हुई है कि यह संसार दुःख का सागर है और इसके पार जाने के लिए प्रयत्न करना हमारा परम धर्म्म है।

अन्य देशों—अर्थात् इँगलैंड, फ्रांस, जरमनी, अमेरिका इत्यादि—के निरीश्वरवादी अनेक युक्ति-प्रयुक्ति द्वारा ईश्वर के अस्तित्व में शङ्का करते हैं। कोई कहते हैं ईश्वर नहीं; सृष्टि स्वभाव ही से उत्पन्न होती है। कोई कहते हैं, ईश्वर हो तो सकता है, परन्तु उसके होने का कोई प्रमाण नहीं। कोई कहते हैं कि जहाँ चेतना शक्ति देखी जाती है वहाँ शरीर-सम्बन्ध अवश्य होता है। अतएव चेतनाविशिष्ट ईश्वर नहीं हो सकता, क्योंकि उसकी साकारता किसी ने नहीं देखी, अथवा प्रमाण द्वारा सिद्ध करके नहीं बतलाई। इन सब मतों का समालोचन बहुत दुरूह है। अतएव इस प्रस्ताव को हम यहीं समाप्त करते हैं।*

[सितम्बर १९०१

---

* सङ्कलित

७—जीवन क्या वस्तु है ?

जीवन क्या वस्तु है? इस छोटे से प्रश्न का उत्तर पण्डित, मूर्ख, दार्शनिक, अदार्शनिक, वैज्ञानिक, अवैज्ञानिक इत्यादि सभी मनुष्यों ने अनेक प्रकार से दिया है। उन लोगों ने इस सम्बन्ध में इतनी बातें कही हैं जिनकी गिनती नहीं। मालूम होता है, जिस समय से मनुष्य ने चिन्ता करने की शक्ति प्राप्त की उसी समय से इस प्रश्न का उचित उत्तर देने की चेष्टा की जा रही है। पर आज तक इसका उचित उत्तर कोई नहीं दे सका। उच्च श्रेणी के दार्शनिक अपना पोथोपत्रा खोलकर शायद गम्भीर भाव से कहें, तुम, मैं और घट-पट आदि जो कुछ संसार में देख पड़ता है, सभी माया की रचना है। पर, उनके इस उत्तर से मन सन्तुष्ट नहीं होता। यह संसार माया की रचना भले ही हो, पर इस तत्त्व-ज्ञान से मन को शान्ति नहीं मिल सकती। जो वस्तुयें जड़ हैं उनमें किस प्रकार चेतन-शक्ति उत्पन्न होती है, किस प्रकार उनमें जीवन के अनेक अद्भुत कार्य होते देख पड़ते हैं—मन यही बात जानने को उत्सुक रहता है। इस दशा में पूर्वोक्त प्रश्न तत्त्व-ज्ञान की सीमा से निकलकर विज्ञान के दायरे में आ पहुँचता है। आधुनिक विज्ञान-शास्त्र इसका उत्तर किस प्रकार देता है, इस लेख में हम यही दिखाने की चेष्टा करेंगे।

वर्तमान काल के वैज्ञानिक कहते हैं—दूध में जामन, अर्थात् दही का बीज, देने से वह जिस प्रकार जमकर दूसरे रूप में बदल जाता है, उसी प्रकार जीवन का कार्य दूसरे रूप में परिणत हो जाने पर ही यथावत् चलता है। जामन से सिर्फ़ दही ही नहीं जमता, मैदा और सूजी भी जमती है। जब हम ख़मीर का जामन देते हैं तब वे भी दोनों ही जम जाते हैं। उन्हीं की हम डबल रोटी पकाते हैं। विज्ञान की भाषा में जिसे हम जीवन कहते हैं, वह इसी प्रकार के जामनों या मिश्रणों से बना हुआ है। पहले पहल सुनने पर यह बात असम्भव सी मालूम होती है। पर इसकी सचाई के इतने प्रमाण मौजूद हैं कि हमें इसे सच ही मानना पड़ता है।

कभी किसी बड़े सिद्धान्त का निश्चय एक ही दिन में अथवा एक ही व्यक्ति के द्वारा नहीं हुआ। किसी ने उपादान ढूँढ़े, किसी ने उन्हें एकत्र किया और किसी ने उनकी सचाई का पता लगाया। वर्षों बाद एक-एक सिद्धान्त पूर्ण रूप से निश्चित होता है। हम जिस सिद्धान्त की यहाँ आलोचना करने चले हैं उसका भी निश्चय धीरे ही धीरे होता आया है। उसके निश्चय में प्राचीन तथा वर्तमान समय के अनेक शरीर-तत्त्व-विशारदों का हाथ लगा है। पहले पहल जिन लोगों ने उसकी नींव डाली थी उनका स्मरण करते ही हमें फ़ान्स के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक पास्टुर (Posteur) का नाम याद आता है। दूध में दही का बीज और मैदे तथा सूजी में ख़मीर

का बीज देने से वे क्यों जमकर दूसरा रूप धारण करते हैं, इस विषय पर उन्होंने पहले पहल खोज की। उससे उन्हें मालूम हुआ कि दूध तथा मैदे में एक प्रकार के छोटे-छोटे जीव पैदा हो जाते हैं। अतएव हम जब जमाने के लिए दूध में दही का जामन देते हैं तब उसके साथ ही कुछ थोड़े से जीवाणु उसमें छोड़ देते हैं। तब वे सारे जीवाणु बढ़ने लगते हैं और दूध को ढक लेते हैं। उस समय दूध दही का रूप धारण कर लेता है। केवल इन्हीं वस्तुओं में नहीं, कुछ रोगों में भी ये कीटाणु अपना काम करते हैं। इसका भी प्रमाण पास्टुर साहब को मिल चुका था। रोगों के जीवाणु, मनुष्य अथवा अन्य प्राणियों के शरीर में जाकर, जब अपना वंश-विस्तार करते हैं तभी उन रोगों के उद्भव का विशेष लक्षण प्रकट होता है। यह बात प्रत्यक्ष देखी गई है। इसके अतिरिक्त पास्टुर साहब ने यह भी दिखाया कि विशेष-विशेष जीवाणुओं का कार्य प्राणियों की तन्दुरुस्ती का भी कारण होता है। अर्थात् मनुष्य की तन्दुरुस्ती क़ायम रखने के लिए कुछ कीटाणुओं को कार्य करते रहने की आवश्यकता है। पास्टुर साहब बड़े भारी विज्ञानवेत्ता थे। उन्हें रसायन-शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था। उन्होंने स्पष्ट दिखला दिया कि जीवाणुओं के द्वारा मनुष्य के शरीर में तथा अनेक जड़ पदार्थों में भी जो परिवर्तन होता है वह रासायनिक परिवर्तन है पर, इस बात को सर्वसाधारण में प्रकाशित करने का पाप वे अपने ऊपर न ले सके।

जीवन के कार्यों के साथ रासायनिक कार्यों का सम्बन्ध है, यह बात प्रकाशित करना उस समय सचमुच ही बड़ा पाप समझा जाता था। बड़े-बड़े धुरन्धर विज्ञान-वेत्ता भी उस समय जीवन के कार्यों को एक प्रकार का सृष्टि-रहस्य ही समझते थे। उस समय के विज्ञानवेत्ताओं का ख़याल था कि परीक्षा करने के समय अनेक प्रकार के संयोग-वियोग से जो रासायनिक घटनायें होती हुई हम देखते हैं और उस समय जिन प्राकृतिक नियमों का साक्षात्कार हम करते हैं, प्राणियों की देह के कार्यों से उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। इसी कारण वे प्राणियों की देह में होनेवाले जीवाणुओं के कार्य को जीव ही का कार्य मानते थे। अतएव यह सिद्धान्त ज्यों का त्यों अटल बना रहा। जीव के कार्य के साथ रासायनिक कार्य का भी संयोग है, यह उस समय किसी के ध्यान ही में न आता था।

पास्टुर के मरने के बाद जर्मनी में बुकनर (Buchner) नामक एक असाधारण प्रतिभाशाली वैज्ञानिक का जन्म हुआ। वह बड़ा ही स्वाधीनचेता था। जीवाणुओं का कार्य मुख्यतः जीव का कार्य होने पर भी वह रासायनिक कार्य है, इस बात का प्रतिपादन बुकनर बड़े ज़ोर से करने लगा। केवल प्रतिपादन ही नहीं, उसने यह बात सबके सामने प्रत्यक्ष करके भी दिखला दी। उसने एक प्रकार का जामन लेकर उसे ख़ूब ज़ोर से दबाया। इससे जामन के कोष (Cells) टुकड़े-टुकड़े

हो गये और उनसे एक पतला रस निकलने लगा। इस रस की परीक्षा करके बुकनर ने दिखाया कि ताजे जीवाणुओं से युक्त कोई पदार्थ—कोई जामन—डालने पर दूध और चीनी आदि पदार्थों में जो परिवर्तन होता है, जीव-कोषों का यह रस डालने से भी उनमें वही परिवर्तन होता है। उसी समय से लोग समझने लगे कि जीवाणुओं के कार्य का सम्बन्ध जीवनी शक्ति नामक सृष्टि के किसी रहस्य से नहीं। उस समय इसका तो निश्चय न हो सका कि जीवाणु अपनी देह में रस किस प्रकार बनाते हैं; पर, इसमें किसी को सन्देह न रहा कि जीवाणुओं का यह रस ही अनेक पदार्थों में मिलकर रासायनिक क्रिया पैदा करता है। पास्टुर साहब जिस जीवनी शक्ति के भय से अपना सिद्धान्त प्रकाशित न कर सकते थे उसकी नींव अब हिल उठी।

इसके थोड़े ही दिनों बाद बरट्रेन्ड (Gabriel Bertrand) नामक एक फ़रासीसी विज्ञानवेत्ता ने इस विषय की गवेषणा प्रारम्भ की। उसकी इस गवेषणा के फल से जीवन के कार्य के साथ रासायनिक कार्य की एकता और भी स्पष्ट हो गई। इसके पहले भी जीवनी शक्ति और रासायनिक शक्ति की एकता की बात लावोसियर नामक एक फ़रासीसी विद्वान् ने प्रकट की थी। परीक्षा-भवन में आक्सिजन संग्रह करते समय हम लोग जिस प्रकार कभी-कभी वायु के नाइट्रोजन का वर्जन करके आक्सिजन ग्रहण करते हैं, प्राणियों का फेफड़ा भी ठीक

उसी प्रकार आक्सिजन ग्रहण करके जीवन का कार्य चलाता है। यह बात भी बहुत समय पहले लावोसियर साहब ही ने प्रकट की थी। बरट्रेन्ड साहब दिखलाने लगे कि प्राणियों का फेफड़ा ऐसी वस्तु है जिसका काम वायु से आक्सिजन संग्रह करना ही है। उत्ताप से फेफड़ा नष्ट हो जाता है; क्षार (acid) अथवा विष का सम्पर्क होने पर उसकी गति बन्द हो जाती है। उसका प्रत्येक कार्य, पास्टुर साहब के आविष्कार किये हुए खमीर के कार्य से ज्यों का त्यों मिल गया। बरट्रेन्ड साहब ने इसका नाम रक्खा—Oxybase।

इस आविष्कार के पहले प्राणितत्त्व-वेत्ता और शारीर-शास्त्र-वेत्ता लोग निश्चिन्त न थे। पास्टुर साहब के पैदा होने के बहुत पहले ही वैज्ञानिकों ने बीज से अंकुर निकलने की क्रिया का विवेचन किया था। उन्होंने यह अनुभव प्राप्त किया था कि नवअंकुरित बीज में कोई ऐसी वस्तु है जो बीज के श्वेतसार, माड़ी या निशास्ते (Starch) को अलग करके अन्य कई प्रकार के पदार्थों में बदल देती है। प्राणियों के मुख की लार में भी एक प्रकार की ऐसी ही वस्तु मिली हुई है, यह बात भी उस समय विदित हो गई थी। इसके बाद प्राणियों के मेदे या पाकाशय में पेप्सिन (Pepsin) नामक एक वस्तु पाई गई। इसी वस्तु के गुण से प्राणी मांस और अण्डे आदि खाद्य पदार्थ पचा सकते हैं। प्राणियों की देह में यकृत से जो पित्तरस (Bile) पैदा होता है वह किस प्रकार तैल-युक्त

भोज्य पदार्थ को शरीर के काम में लगाता है, इसका भी कुछ-कुछ आभास लोगों को मिला। इसके अतिरिक्त पाकाशय में होनेवाले अन्यान्य रसों के कार्यों का लक्षण भी वैज्ञानिकों को मालूम हो गया। पास्टुर साहब का आविष्कार और बरट्रेन्ड साहब की परीक्षा का फल प्रकाशित होने से लोगों का ध्यान इन सब बातों की ओर और भी आकृष्ट हुआ। प्राणियों की देह में विद्यमान अनेक प्रकार के रसों के कार्य के साथ पास्टुर के आविष्कार किये हुए ख़मीर के कार्य की एकता देखकर सब लोग अवाक् रह गये। विज्ञानवेत्ता उन रसों के अनेक नाम रखने लगे, जिससे ख़मीर के सजीव जीवाणुओं और प्राणियों की देह के अनेक रसों की विभिन्नता जानी जा सके। कोई उन्हें Enzymes और कोई Zymases कहने लगे।

जिस समय पास्टुर के आविष्कार किये हुए जीवाणुओं के कार्यों के साथ अनेक प्रकार के शारीरिक कार्यों की एकता धीरे-धीरे मालूम की जा रही थी, उसी समय अचानक एक ऐसी बाधा आ पड़ी जिसने खोज की गति को एकदम बन्द कर दिया। वैज्ञानिकों ने सोचा कि पास्टुर के आविष्कृत जीवाणुओं का कार्य केवल वस्तु के टुकड़े-टुकड़े करना है, और कुछ नहीं। जब शकर में हम विशेष जीवाणु-युक्त ख़मीर डालते हैं तब शकर टुकड़े-टुकड़े होकर मद्य (Alcohol) और अङ्गारक वाष्प (Carbonic Acid) उत्पन्न करती है। पाकाशय का पेप्सिन नामक रस भी ठीक इसी प्रकार पेट में पहुँचे हुए खाद्य

पदार्थ को टुकड़े-टुकड़े करके उससे अनेक प्रकार के नवीन पदार्थ पैदा करता है। पर, प्राणियों के शरीर में पदार्थों के भङ्ग होने ही का काम नहीं होता। उनके सङ्गठन का भी काम होता है। इस सङ्गठन-कार्य की व्याख्या कैसे हो ? उन पदार्थों के टुकड़े-टुकड़े होने ही से तो जीवन का काम नहीं चलता। जीवन का काम चलने के लिए पदार्थों के बनने की भी आवश्यकता है। इससे जो लोग जामन के द्वारा शरीर में उबाल, उफान या जोश ही को जीवन का कारण मानकर हर्षित हो रहे थे, उन्हें कुछ दिनों के लिए चुप्पी साधनी पड़ी।

पर खोज का अन्त न हुआ। अनेक देशों के अनेक वैज्ञानिक इस बात का अनुसन्धान करने लगे कि उबाल या जोश से कोई नई वस्तु तैयार होती है या नहीं। कई प्रकार की वस्तुओं में कई प्रकार का जामन दिया गया, पर किसी में कोई नवीन वस्तु बनी न दिखाई दी। अन्त में एक अँगरेज़ रसायन-शास्त्री, हिल साहब (Croft Hill) ने एक परीक्षा में जामन द्वारा एक नवीन बनी हुई वस्तु दिखाकर सब लोगों को विस्मित कर दिया। जामन देने पर श्वेतसार अर्थात् निशास्ता (Starch) शक्कर आदि पदार्थों में विश्लिष्ट हो जाता है। जब तक श्वेतसार का एक भी कण बाक़ी रहता है तब तक यह परिवर्तन जारी रहता है। श्वेतसार ख़तम हो जाने पर विश्लेषण बन्द हो जाता है और नया श्वेतसार फिर डालने पर वह फिर शुरू हो जाता है। हिल साहब ने एक पात्र में श्वेतसार के

साथ ख़मीर मिलाकर उसे पूर्ण रूप से विश्लिष्ट कर दिया। इसके बाद धीरे-धीरे वे उसमें शकर डालने लगे। ऐसा करने पर उन्हें देख पड़ा कि शकर के योग से श्वेतसार का सङ्गठन फिर होने लगा। इस दशा में पास्टुर के जामन द्वारा उबाल या जोश के कार्य से जिस प्रकार पदार्थ का विश्लेषण होता है, उसी प्रकार उससे नवीन पदार्थ का सङ्गठन भी होता है, यह बात पूर्णरूप से सिद्ध हो गई।

हिल साहब का यह आविष्कार, थोड़े ही दिन हुए, प्रकाशित हुआ है। इसे प्रकाशित हुए सम्भवतः दस-बारह वर्ष से अधिक न हुए होंगे। पर, वैज्ञानिक लोग इस एक ही उदाहरण से सन्तुष्ट न हुए। सभी देशों के विद्वान् नये-नये उदाहरण संग्रह करने के लिए खोज करने लगे। हाल ही में जर्मनी के एक प्रसिद्ध रसायनशास्त्री इमर्लिंग साहब (Emmerling) ने एक और उदाहरण देकर लोगों को आश्चर्य में डाल दिया है। उन्होंने बादाम के तेल में एक प्रकार का जामन दिया। फल यह हुआ कि वह शकर और हाईड्रोसाइनिक एसिड (Hydrocyanic Acid) नामक विषाक्त पदार्थ में विश्लिष्ट हो गया। पर, इसके बाद ही उन्होंने उसमें एक प्रकार का और जामन दे दिया। इस जामन के पड़ते ही वह फिर बादाम का तेल हो गया।

इस आविष्कार के बाद से प्रतिवर्ष जामन के संयोग से और-और नवीन वस्तुओं की उत्पत्ति का समाचार मिल रहा

है। पास्टुर का आविष्कार किया हुआ तत्त्व पदार्थों का विश्लेषण करने ही तक सीमाबद्ध नहीं है। आजकल वैज्ञानिकों को इस बात का पूर्ण रूप से निश्चय हो गया है। इसी लिए मानना पड़ता है कि एक प्रकार के जामन से जिस तरह हम श्वेतसार को विश्लिष्ट करके शकर आदि में परिणत करते हैं और इसके बाद एक दूसरे प्रकार के जामन से जिस तरह हम फिर उसे श्वेतसार बना देते हैं उसी तरह प्राणियों के शरीर में भी निरन्तर विश्लेषण और संश्लेषण का कार्य चलता रहता है। देह में रहनेवाला कोई जामन तो पेट में पहुँचे हुए मांसल खाद्य को टुकड़े-टुकड़े करता है और कोई तैल-विशिष्ट खाद्य का विश्लेषण करता है। इसके सिवा एक और प्रकार का नया जामन इन सब वस्तुओं के साथ मिलकर सम्भवतः इनसे ऐसी अनेक वस्तुयें तैयार करता है जो स्थायी रूप से देह का भी अङ्ग हो जाती हैं।

इन सब आविष्कारों के द्वारा शारीर-तत्त्व ने मानों एक नया जीवन प्राप्त कर लिया है। वर्तमान समय के वैज्ञानिक इस विषय की जितनी ही खोज करते हैं उतने ही नये-नये तत्त्व प्रकट होते हैं। आजकल के शारीर-तत्त्व-विशारद कहते हैं कि सुई की नोक इतने शरीर के भाग में करोड़ों जीव-कोष (Cells) वर्तमान हैं। इन जीव-कोषों में से प्रत्येक कोष एक बहुत बड़े विज्ञानागार के सदृश है। एक ही विज्ञानागार में जिस प्रकार अनेक मनुष्य अनेक पदार्थ तैयार करते हैं उसी प्रकार एक-एक

कोष के भीतर भी अलग-अलग दस-बारह कोठरियों में दस-बारह तरह के जामन अपने ही आप तैयार होते रहते हैं। काम होते ही यह सब रस विश्लेषण और संश्लेषण का कार्य करते हुए जीवन का कार्य चलाते हैं। प्राणियों के यकृत में असंख्य अतीन्द्रिय सूक्ष्म कोष रहते हैं। उनमें से प्रत्येक कोष में जो जामन तैयार होता है उसमें से कुछ तो यूरिया (Uria) बनाता है और कुछ पित्त-रस। उसका कुछ भाग अनेक प्रकार के रङ्ग बनाने में भी लगा रहता है। इसके सिवा कुछ जामन देह के विष को अलग-अलग करके नष्ट करता है; कुछ पाकाशय में पैदा हुए अम्ल पदार्थ को दूसरे से मिलाता है। यकृत ही में नहीं, प्लीहा, मूत्राशय और फेफड़े आदि देह के सभी अवयवों में करोड़ों जीव-कोषों का कार्य नियमित रूप से चलता रहता है। यहाँ तक कि मस्तिष्क एवं स्नायु-समूह में भी इसी प्रकार का कोई जामन पैदा होकर संश्लेषण-विश्लेषण के द्वारा जीवन का कार्य चलाता है। अतएव जामन से दही का बनना और जीवन का कार्य दोनों एक ही बात है। हमने लेख के प्रारम्भ में जो बात कही थी वह निरर्थक नहीं। परीक्षाओं से वह स्पष्ट सिद्ध हो चुकी है।

यहाँ पर पूछा जा सकता है कि आजकल वैज्ञानिक लोग प्राणियों की देह के जिन सब जामनों को जीवनी शक्ति का मूल कारण मानते हैं वे Enzymes और Zymases हैं क्या चीज़? वर्तमान समय के वैज्ञानिक अभी तक इसका

यथार्थ उत्तर नहीं दे सके। पर, इसका यथार्थ उत्तर देना ही आजकल वैज्ञानिकों का मुख्य कर्त्तव्य हो रहा है। इसी उत्तर के लिए अनेक देशों के अनेक वैज्ञानिक बड़ी शान्ति और परिश्रम के साथ प्रयत्न कर रहे हैं। किस शुभ दिन उनका यह कार्य सफल होगा, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। आश्चर्य का विषय तो यह है कि रासायनिक रीति से विश्लेषण करने पर हाइड्रोजन, आक्सिजन, नाइट्रोजन और अङ्गारक के सिवा और कोई वस्तु इन पदार्थों में नहीं मिलती। विज्ञान की इस समय यही मुख्य समस्या हो रही है कि किस प्रकार ये उपयुक्त पदार्थ परस्पर संयुक्त होकर जीवनी शक्ति का विकास करते हैं। रसायन-शास्त्री जिस प्रकार आक्सिजन और हाइड्रोजन को एकत्र करके परीक्षागार में जल बना सकते हैं उसी प्रकार जिस दिन वे अङ्गारक, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन इत्यादि को मिलाकर एक बूँद जामन या एक जीव-कोष तैयार कर सकेंगे, उसी दिन विज्ञानशास्त्र अपने को धन्य मानेगा।*

[मई १९१७

---

* प्राकृतिकी नामक बँगला पुस्तक से अनुवादित

८—मृत्यु का नया रूप

प्राणि-जगत् की ओर स्थूल भाव से दृष्टि डालने पर मालूम होता है कि अपने-अपने वंश की रक्षा करना ही प्राणियों और उद्भिदों के जन्म का मुख्य उद्देश है। प्राणी और उद्भिद् दोनों की उत्पत्ति एक-एक सूक्ष्म जीव-कोष से होती है। यह जीव-कोष गर्भ में अनेक कोषोंवाला होकर नाना प्रकार के निर्दिष्ट आकार धारण करता है। इस प्रकार के आकारों को धारण करके वह पूरा प्राणी या उद्भिद् बन जाता है। इन प्राणियों और उद्भिदों का शरीर जब बढ़कर पूर्ण हो जाता है तब ये एक-कोष-मय अनेक नवीन जीव पैदा करके अपने जीवन की समाप्ति करते हैं। इस अवस्था को पहुँचकर ये प्राणी और उद्भिद् प्रकृति से मानों अपना सम्बन्ध त्याग देते हैं। उस समय केवल मृत्यु की गोद ही इनका आश्रय होता है। बहुत से ओषधि-जातीय-उद्भिद् तो एक ही बार फल देकर चल बसते हैं। बहुत से प्राणी भी सन्तान पैदा करने के साथ ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इस दशा में हमें देख पड़ता है कि सारे संसार के चक्र के भ्रमण के साथ प्राणी का जीवन भी ख़ूब भ्रमण कर रहा है। सृष्टि के आरम्भ ही से प्राणि-जगत् में एक-कोषवाले जीव से और एक नये-कोषवाले जीव की उत्पत्ति होती चली आती है। अपने वंश के प्रवाह को ज्यों का त्यों

बना रखकर मर जाना ही जीवन की सार्थकता है। पूर्वोक्त विवेचन से यही प्रतीत होता है।

जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध की पूर्वोक्त बातें जड़-विज्ञानियों ही की कही हुई हैं। माता, पिता से जन्म लेकर आहार आदि के द्वारा शरीर को पुष्ट करना और अन्त में अपने जीवन का प्रवाह अपनी सन्तान की देह में डालकर मर जाना उद्भिद् और अन्यान्य प्राणियों के जीवन का लक्ष्य हो सकता है। पर मनुष्य-जीवन का लक्ष्य वह नहीं। मनुष्य बहुत बड़ी बुद्धि का अधिकारी होकर जन्म लेता है। उसको वंश की रक्षा का प्रयोजन बहुत कम है। इस दशा में यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रकृति देवी ने अपने हाथ से जो शक्ति मनुष्य के शरीर में निहित की है उसका उपयोग अन्यान्य प्रयोजनों की सिद्धि के लिए आवश्यक है। जो हो, इस कठिन दार्शनिक विचार की आलोचना करना इस लेख के लेखक की शक्ति के बाहर का काम है। हमारा आलोच्य विषय यहाँ 'मृत्यु' है। मृत्यु की तरह कठोर सत्य, मालूम होता है, संसार में दूसरा नहीं।

पृथ्वी के सभी प्राणी मनुष्य की तरह जटिल इन्द्रियों से युक्त होकर जन्म नहीं लेते। जिनके आँख, कान, नाक और जीभ नहीं, ऐसे भी प्राणी इस भूमण्डल में कम नहीं। ऐसे प्राणी अचेतन की तरह जल या स्थल में पड़े रहते हैं। खाने की कोई चीज़ उनके शरीर से लगते ही उसका सारा सार चूसकर वे अपना पोषण करते हैं। उनमें स्त्री-पुरुष का भेद भी

नहीं देखा जाता। मालूम होता है, अपने शरीर को खण्ड-खण्ड करके वंश-विस्तार करना ही उनके जीवन की सार्थकता है। इन सब प्राथमिक प्राणियों की मृत्यु की परीक्षा करने से विदित होता है कि इनकी मृत्यु एक साधारण बात है। उसमें किसी प्रकार की जटिलता नहीं। घृत में गर्मी पहुँचाने से जिस प्रकार वह तरल हो जाता है, इनकी मृत्यु का भी ठीक यही हाल है। जीवन का कार्य समाप्त कर चुकने पर धीरे-धीरे इनका शरीर विश्लिष्ट हो जाता है। पञ्च-भूतों का बना हुआ वह शरीर फिर पञ्चभूतों में मिल जाता है। किन्तु उच्च प्राणियों की मृत्यु उनके शरीर की जटिल बनावट ही के सदृश आकस्मिक और भयानक है। स्टीम एञ्जिन जैसे जटिल यन्त्र का यदि कोई कल-पुर्ज़ा ख़राब हो जाय तो उससे कितना कर्कश शब्द होने लगता है। शीघ्र ही वह बेकाम भी हो जाता है और उसकी गति भी रुक जाती है। किन्तु यदि रहँट जैसा कोई सरल यन्त्र बिगड़ जाय तो उससे न तो झनझनाहट की आवाज़ ही होगी और न वह बहुत बिगड़ा हुआ ही देख पड़ेगा। उच्च प्राणियों का शरीर स्टीम एञ्जिन के सदृश जटिल है। इसी कारण उसमें किसी वस्तु की कमी होते ही वह एक-दम गतिहीन और विकृत हो जाता है। शरीर के हर अवयव में रक्त का सञ्चार होना जीवन-लक्ष्य का मुख्य अवलम्ब है। रक्त का सञ्चार बन्द होते ही प्राणी की मृत्यु हो जाती है। रक्त में बहती हुई जो छोटी-छोटी लाल कणि-

कार्य देख पड़ती हैं वे शरीर के सब भागों में आक्सिजन (अमृत वायु) पहुँचाती हैं। यदि रक्त में आक्सिजन न हो तो प्राणी की मृत्यु अनिवार्य है। आक्सिजन श्वास के द्वारा शरीर के भीतर जाता है। अतएव श्वास बन्द होते ही प्राणी की मृत्यु हो जाती है। इस दशा में दर्शन-शास्त्री यह कहते हैं कि आत्मा का शरीर-पञ्जर छोड़ देना ही मृत्यु है। वह शरीर-शास्त्र के वेत्ताओं के कथन से मेल नहीं खाता। शरीर-शास्त्र के वेत्ताओं ने तो अनुसन्धान द्वारा प्राणी की समस्त इन्द्रियों और समस्त अवयवों में प्राणवायु का पता लगाया है। उनके मत से प्राणी का समस्त शरीर ही प्राणमय है।

कुछ ही दिन की बात है, फ्रान्स की एक वैज्ञानिक परिषद् (French Academy of Medicine) में वहाँ के डाक्टर केरल (Dr. Alexis Carrel) ने मृत्यु के संबंध में जो दो-चार नवीन बातें कही हैं वे बड़ी ही विस्मय-जनक हैं। आज-कल अद्भुत-अद्भुत वैज्ञानिक बातों की कमी नहीं। अख़-बारों के पन्ने उलटते ही अनेक अद्भुत समाचार पढ़ने को मिलते हैं। किन्तु पूर्वोक्त डाक्टर केरल एक नामी शरीर-शास्त्र-वेत्ता हैं। फ्रान्स की पूर्वोक्त वैज्ञानिक परिषद् भी संसार में बहुत प्रसिद्ध है। इसी कारण हमें मृत्यु के संबंध की इन नवीन बातों पर विश्वास करना पड़ता है। कई साल पहले इन्हीं डाक्टर केरल ने तत्काल मरे हुए प्राणी की देह से मांस का टुकड़ा काटकर उसे जीवित रखने का प्रयत्न किया था।

उनका यह प्रयत्न अब सफल भी हो गया है। उन्होंने कुछ ओषधियों में मांस-खण्ड डुबो रक्खा। इससे वह सजीव होने के लक्षण दिखाने लगा। तब डाक्टर केरल ने उस मांस-खण्ड से कुछ टुकड़े काटकर उनका पेवँद पशुओं के कटे हुए शरीर पर लगाया। उन्हें इस कार्य में भी सफलता प्राप्त हुई। इस आश्चर्यकारक परीक्षा के फल से वैज्ञानिक संसार को विदित हो गया कि जिस देह को हम मृत समझते हैं, उसका बहुत सा अंश मृत्यु का अनुभव करके भी कुछ समय तक जीवित रहता है। वैज्ञानिकों ने मृत देह के इस जीवन को (Intra-cellular life) अर्थात् कोष का जीवन—नाम दिया है। यह आविष्कार बड़ा आश्चर्यजनक है। किन्तु हाल में डाक्टर केरल ने जो नवीन आविष्कार किये हैं उनका विवरण और भी आश्चर्यकारक है। उन्होंने दिखाया है कि देह से अलग होकर केवल मांस-खण्ड ही जीवित नहीं रहता; हृत्-पिण्ड आदि विशेष-विशेष अवयव भी देह से अलग करके जीवित रक्खे जा सकते हैं। ये सब अवयव जीवित अवस्था में देह में रहकर जिस प्रकार अपना-अपना कार्य करते हैं उसी प्रकार इस अवस्था में भी, अर्थात् देह से पृथक् कर देने पर भी, करते हैं। प्राणी का हृत्पिण्ड धीरे-धीरे सिकुड़ता और फैलता हुआ देह में रक्त का सञ्चार करता है। फुस्फुस (फेफड़ा) वायु से आक्सिजन ग्रहण करता है और विषमय अङ्गारक-वाष्प देह से बाहर निकालता है। पाकाशय के सब यन्त्र भोजन का

सार ग्रहण करते हैं और उससे रक्त की कणिकायें बनाते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि शरीर के ये अवयव या यन्त्र-समूह शरीर से अलग होकर भी सावधानी के साथ रखने से जीवित रहते हैं और अपना काम ज्यों का त्यों करते हैं। इसी कारण स्वीकार करना पड़ता है कि देह से अलग होने पर भी ये अवयव जीवन का सब कार्य यथावत् चला सकते हैं।

आज तक जितने बड़े-बड़े आविष्कार हुए हैं उनका इतिहास देखने से पता लगता है कि आविष्कार करनेवालों ने अपने आविष्कारों का आभास पहले किसी दूसरे कार्य में पाया था। इसके बाद कठिन साधनाओं द्वारा कार्य-कारण-भाव का निश्चय करके तब कहीं वे उनकी प्रतिष्ठा कर सके। केरल साहब ने भी अपने इस आविष्कार का आभास एक दूसरे ही कार्य में पाया था। थोड़े दिन हुए, रात को दस बजने के समय फ़्रान्स के एक प्रसिद्ध धनिक की मृत्यु हुई। उसकी बहुत बड़ी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी उसका एक नाबालिग़ लड़का था। क़ानून के अनुसार बालिग़ होने का जो समय निश्चित है लड़का उसे उसी रात के बारह बजे पूर्ण करनेवाला था। अतएव उसके कुटुम्ब के लोग बड़े चिन्तित हुए। वे सोचने लगे कि नाबालिग़ अवस्था में पिता के मर जाने से लड़के को सम्पत्ति का अधिकारी बनने में बहुत कुछ ख़र्च उठाना पड़ेगा। मृत व्यक्ति को दो घंटे तक जीवित रखने के लिये फ़्रान्स के मुख्य मुख्य चिकित्सक बुलाये गये। केरल साहब भी उन्हीं में

थे। वे उसके शरीर के भीतर एक छोटी सी पिचकारी से तरह-तरह की औषधियाँ पहुँचाने लगे। इसका फल यह हुआ कि स्पन्दन-हीन हृद्-यन्त्र फिर स्पन्दन करने लगा। शरीर की गरमी बढ़ी और फेफड़ा भी औषधियों की उत्तेजना से अपना श्वासोच्छ्वास-कार्य करने लगा। इस प्रकार मृत शरीर में नवीन जीवन का सञ्चार हो गया। केरल साहब ने इस प्रकार मृत व्यक्ति को बारह बजने के बाद १५ मिनट तक जीवित रक्खा। पर मृत शरीर में वे चेतना-शक्ति न उत्पन्न कर सके। इसी घटना ने केरल साहब को उनकी गवेषणा का मार्ग दिखला दिया।

जो हो, वर्तमान चिकित्सा-विज्ञान के इस नवीन आविष्कार से संसार के विज्ञान-वेत्ता बहुत कुछ उत्साहित हुए हैं। वे आशा करने लगे हैं कि किसी न किसी दिन मृत देह में चेतना-शक्ति का भी अवश्य सञ्चार किया जा सकेगा। चेतना-शक्ति क्या वस्तु है, यह अब भी जड़ विज्ञानियों को ज्ञात नहीं। इस दशा में मृत शरीर में उसका सञ्चार सम्भव है कि नहीं, यह बात विचारवान् पाठक स्वयं ही सोच सकते हैं।*

[जून १९१६

---

* प्राकृतिकी नामक बँगला पुस्तक से अनुवादित।

६—पुनर्जन्म

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।

श्रीमद्भगवद्गीता

पुनर्जन्म में जिन्हें विश्वास नहीं ऐसे आदमी बहुत कम मिलेंगे। विशेष करके इस देश में तो शायद ही कोई ऐसा हो जिसे पुनर्जन्म पर विश्वास न हो। अपढ़ स्त्रियाँ तक दूसरे जन्म में पाप-पुण्य का फल भोगने की बातें कहा करती हैं। जो कुछ हम देखते हैं उसका अवश्य नाश होगा और जिसका नाश हो गया है उसका अवश्य जन्म होगा। यदि नष्ट हुई चीज़ों का अत्यन्ताभाव मृत्यु होते ही हो जाता तो यह विशाल विश्व कब का तिरोहित हो गया होता। क्योंकि नाश होते-होते एक समय ऐसा ज़रूर आता जब कुछ भी नाश होने को न रह जाता। जिस ख़ज़ाने में ख़र्च ही ख़र्च है, आमदनी बिलकुल नहीं, वह हमेशा क़ायम नहीं रह सकता। जन्म-मरण के विषय को ग्रीस के प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता साक्रेटीज़ ने तर्क द्वारा बहुत अच्छी तरह समझाया है। उसकी तर्कना-प्रणाली का आभास हम अपने 'आत्मा' नामक लेख में दे चुके हैं।

पुनर्जन्म का प्रत्यक्ष प्रमाण आज-कल की नवाविष्कृत अध्यात्म-विद्या (Spiritualism) से ख़ूब मिलता है। क्योंकि इस विद्या के बल से आदमी इस लोक से मुक्त हुई आत्माओं से अच्छी तरह बातचीत कर सकता है। एक शरीर को छोड़कर फिर इसी लोक में दूसरा शरीर धारण करने ही का नाम पुनर्जन्म नहीं। पार्थिव शरीर से मुक्त हुई आत्मा का आविर्भाव चाहे जिस लोक में और चाहे जिस रूप में हो वह भी पुनर्जन्म ही है। क्योंकि देह और लोक निस्सार चीज़ें हैं, सार चीज़ है सिर्फ़ आत्मा। वह चाहे जहाँ और जिस आकार में परिणत होकर आविर्भूत हो, उसका पुनर्जन्म ही माना जायगा।

अध्यात्म-विद्या का अभ्यास करनेवालों के चक्र में जो आत्मायें आती हैं वे कहती हैं कि उनका भी रूप है। पर है वह सूक्ष्म—इतना सूक्ष्म कि हम लोग चर्म-चक्षुओं से उसे नहीं देख सकते। फिर, ऐसी आत्माओं के दर्जे भी हैं। कोई किसी दर्जे की है, कोई किसी दर्जे की। एक दर्जे की आत्माओं को दूसरे दर्जे की आत्माओं का बहुत कम हाल मालूम रहता है। जिनको हम भूत, प्रेत, आदि नामों से उल्लेख करते हैं वे सबसे नीचे दर्जे की आत्मायें हैं। इन सब आत्माओं के भी पीछे सुख-दुःख का झंझट लगा है। और इनकी भी कृतकर्मानुसार एक दर्जे से दूसरे दर्जे में तरक़्क़ी हो जाती है। यही आत्मायें, समय आने पर, फिर पार्थिव शरीर में प्रवेश करती हैं।

कार्य हमेशा देख पड़ता है। पर कारण बहुधा अदृश्य रहता है। तथापि अदृश्य रहने के कारण हमें उसके अस्तित्व में शङ्का न करनो चाहिए। माध्याकर्षण की सत्ता में तो किसी को शङ्का नहीं। पर हमें वह कहाँ देखने को मिलता है? देखने को हमें सिर्फ़ मिलता है उसका कार्य। इसी तरह बिजली की शक्ति से कौन नहीं परिचित? वह आजकल सैकड़ों विस्मयजनक काम करती है। पर उस शक्ति को क्या किसी ने आँख से देखा है? नहीं। अतएव न देख पड़ने से कोई वस्तु अभाव को नहीं प्राप्त हो सकती।

वनस्पति-वर्ग के बीजों को देखिए। वे कंकड़ की तरह बिलकुल सूखे और कड़े होते हैं। कोई-कोई तो इतने सख़्त होते हैं कि बिना तेज़ धारवाले शस्त्रों की मदद के कटते ही नहीं। तिस पर भी ऐसे बीजों में जीवनी शक्ति छिपी रहती है। उचित सामग्री के एकत्र होते ही उस शक्ति की प्रेरणा से बीज अंकुरित हो उठता है और बढ़ने लगता है। इस प्रसङ्ग में बिना किसी प्रकार की शक्ति की कल्पना किये निस्तार नहीं। कारण-रूप शक्ति यदि न मानी जायगी तो कार्य-रूप बीजांकुर की उत्पत्ति किस तरह कोई मान सकेगा? बिना कारण के कार्य नहीं होता और जिस कारण का अभाव है उसके कार्य की भावात्मक भावना नहीं हो सकती।

यह एक सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि पदार्थों के परमाणु कभी नष्ट नहीं होते। किसी न किसी रूप में वे ज़रूर बने

रहते हैं। इन परमाणुओं पर अदृश्य वेगों और अदृश्य शक्तियों का प्रभाव पड़ने से पदार्थों के सूक्ष्म रूप पैदा हो जाते हैं। उचित अवसर आते ही यही सूक्ष्म रूप स्थूलता को प्राप्त हो जाते हैं। तब हम उन्हें प्रत्यक्ष देख सकते हैं। जितने स्थूल पदार्थ हैं सब सूक्ष्म परमाणुओं पर सूक्ष्म शक्तियों के मिश्रण के परिणाम या कार्य हैं। आक्सिजन और हाइड्रो-जन एक प्रकार के वायुरूप "गैस" हैं। इनके भीतर पानी के परमाणु सूक्ष्म रूप से रहते हैं। पर हम उन्हें देख नहीं सकते। पानी उनमें बीज रूप से रहता ज़रूर है, पर देख नहीं पड़ता। परन्तु पानी के यही सूक्ष्म परमाणु जब रासायनिक प्रक्रिया-रूपी अदृश्य शक्ति का योग पाते हैं तब प्रकट हो जाते हैं। यदि पहले ही से पानी उनमें न होता तो कदापि वह स्थूल रूप पाकर दृग्गोचर न होता। इससे यह सिद्ध है कि पदार्थों के सूक्ष्म रूप होते हैं और सूक्ष्म शक्तियों के द्वारा वे स्थूल हो जाते हैं। स्थूलता विकारात्मक दशा है। सूक्ष्मता स्वाभाविक। मनुष्य का शरीरवान् होना एक प्रकार का विकार है। शरीर छोड़कर पूर्ववत् सूक्ष्म परमाणुओं में परिणत हो जाना उसकी सहजावस्था है। इसी से कालिदास ने कहा है—

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवनमुच्यते बुधैः।

अर्थात् मर जाना स्वाभाविक है, जीना अस्वाभाविक।

वनस्पतियों के बीज में जैसे उनके स्थूल शरीर के सूक्ष्म पर-माणु रहते हैं और एक अदृश्य शक्ति के योग से वे स्थूलत्व को

प्राप्त होते हैं वैसे ही मनुष्य के स्थूल शरीर के सूक्ष्म परमाणु उसके लिङ्ग-देह नामक बीज में विद्यमान रहते हैं। पाँच महा-भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि और प्राण आदि के सूक्ष्म परमाणुओं का समूह लिङ्ग-देह कहलाता है। वही मनुष्य के स्थूल शरीर का बीज है। इस बीज में मनुष्य के पूर्व-जन्म के संस्कार और वासनायें मिली रहती हैं। जो कुछ कर्म मनुष्य करता है उसका संस्कार कभी नष्ट नहीं होता। वासना के रूप में उसके परमाणु लिङ्ग-देह में लीन हो जाते हैं। अत-एव अगले जन्म में उसके परिणाम ज़रूर भोगने पड़ते हैं। पुन-र्जन्म मानने से वासनाओं का परिणाम-भोग मानना ही पड़ेगा।

अभी उस दिन हमने अध्यात्म-विद्या-विषयक एक चक्र का हाल एक पुस्तक में पढ़ा। मरने के चार ही पाँच दिन बाद एक आदमी चक्र-गत एक व्यक्ति के सिर आ गया। उसने बेतरह रोना, चिल्लाना और विलाप करना शुरू कर दिया। बात यह थी कि वह समझता था कि उसकी अकाल-मृत्यु का कारण एक ऐसा आदमी है जिसने एक नाटक में उससे नहुष का अभिनय कराया था। मृत मनुष्य इस आदमी पर अत्यन्त कुपित था और अपनी स्त्री और सन्तति को अपने वियोग में व्याकुल देख अत्यन्त ही विकल था। अब यदि इस व्यक्ति के मन पर पूर्व वासनाओं का संस्कार न हुआ होता और मरणानन्तर वे उसके साथ न रहतीं तो कोप और वैकल्य आदि विकार, शरीर छोड़ने पर भी, उसमें कदापि न देख पड़ते।

वेदान्त शास्त्र में पुनर्जन्म का जो कारण बतलाया गया है वह वासनाओं ही की विद्यमानता है। वासनायें बड़ी प्रबल होती हैं। उनकी शान्ति महा दुष्कर बात है। और जब तक वासनायें बनी हैं तब तक पुनर्जन्म से कभी छुटकारा नहीं मिल सकता। लिङ्ग-देह में गुप्त रीति से वे सञ्चित रहती हैं और स्थूल शरीर मिलने पर उनके परिणाम शुरू हो जाते हैं। उनके परमाणु कुछ काल तक निष्क्रिय रूप में चुपचाप पड़े रहते हैं। परन्तु यथासमय उनकी उद्दीपक सामग्री इकट्ठी होते ही वे अपने क्रिया-कलाप दिखलाने लगते हैं।

जीवित अवस्था में मनुष्य के मन में जो वासनायें, जो कल्पनायें, जो इच्छायें अत्यन्त बलवती होती हैं वे मृत्यु निकट आने पर और भी क्षुब्ध हो उठती हैं। कारण यह है कि उस समय प्राणी को उन्हीं की भावना बार-बार होती है। जिसकी जिस वस्तु पर अधिक प्रीति होती है वह उसी की भावना सदा किया करता है। जब उसे यह मालूम होता है कि मृत्यु होने पर उस वस्तु का उससे हमेशा के लिये वियोग हो जायगा तब वह भावना और भी अधिक उद्दाम हो उठती है। मरने पर इस तरह की वासनाओं का संस्कार मृत मनुष्य के लिङ्ग-देह-रूपी बीज के साथ बना रहता है। एक आधुनिक विद्वान् ने हर्ष, शोक, क्रोध, आदि विकारों के रङ्ग-रूपवान् चित्र तक बना दिये हैं। यदि इन विकारों का कोई आकार हो सकता है तो प्रबल वासनाओं का आकार भी—

चाहे वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म ही क्यों न हो—ज़रूर हो सकता है। अतएव परमाणु-रूप में उसका बना रहना कोई ऐसी बात नहीं जो समझ में न आ सके।

मरने के समय वासनाओं के प्राबल्य के कारण मनुष्य का आन्तरिक रूप जैसा हो जाता है—बीज के रूप में बना रहकर वही पुनर्जन्म को प्राप्त होता है। आत्मा अविनाशी है। इसमें तो सन्देह ही नहीं। अतएव मरणानन्तर मनुष्य की आत्मा इन्हीं वासनारूपी रस्सियों से बँध जाती है। इन्हीं के साथ लिङ्ग-देह की बाक़ी सामग्री भी रहती है। मनुष्य के स्थूल शरीर का यही बीज बार-बार जन्म-मरण की व्यथा सहता है। बार-बार मरता है और बार-बार वासनाओं की प्रबल प्रेरणा से जन्म लेता है। जब तक ज्ञानाग्नि से यह बीज जलकर ख़ाक नहीं हो जाता तब तक इसे जन्म-मरण की शृङ्खला से छुटकारा नहीं मिलता। पानी के एक बूँद को लीजिए। कभी वह प्रत्यक्ष देख पड़ता है; कभी भाफ़ होकर अदृश्य हो जाता है; कभी मेघों में लीन हो जाता है; कभी पर्जन्य होकर गिरता है। कभी वह कोई आकार धारण करता है, कभी कोई। कभी दृश्य रहता है, कभी अदृश्य। पर उसका समूल नाश कभी नहीं होता। उसका अत्यन्ताभाव नहीं होता। इसी तरह मनुष्य-बीज-रूपी लिङ्ग-देह कभी स्थूलता, कभी सूक्ष्मता, कभी दृश्यभाव, कभी अदृश्य-भाव को प्राप्त हुआ करता है; पर विनष्ट नहीं होता। वासना-रूपी रस्सियाँ

उसे ख़ूब मज़बूती से बाँधे रहती हैं। उनके रहते इस बीज के परिणामों से बचना त्रिकाल में भी सम्भव नहीं।

जितने प्रकार के वनस्पति हैं सबकी बनावट, तासीर, फूल, फल आदि जुदा-जुदा हैं। हर एक के लिए प्रायः जुदा-जुदा तरह की आबोहवा, ज़मीन और खाद इत्यादि दरकार होती है। कल्पना कीजिए कि आपने एक पौधा अपने बाग़ में लगाया। ज़मीन के भीतरी खाद्य द्रव्यों में से उसे जितने द्रव्य-रस अपेक्षित होंगे उतने ही वह चूसेगा। अनपेक्षित नहीं चूसेगा। और यदि उसके अनुकूल कोई द्रव्य वहाँ न होगा तो वह अनाहार रहकर मर जायगा—सूख जायगा। यह बीजगत विलक्षणता है। प्रत्येक बीज में एक ऐसी शक्ति होती है कि वह अपने फल-फूलों के अनुकूल ही खाद्य-पदार्थ ढूँढ़ लेता है। इसी तरह वासनाओं की तृप्ति के लिए मनुष्य का लिङ्ग शरीर-रूपी बीज अपनी परम्परा-प्राप्त विलक्षण शक्ति की प्रेरणा से तदनुकूल देश, काल, अवस्था, माता, पिता आदि साधनों को ढूँढ़ निकालता है।

पूर्व वासनायें यदि सञ्चित न रहतीं—पूर्वकृत कर्मों का संस्कार यदि बना न रहता—तो मनुष्य अनेक प्रकार के अद्भुत-अद्भुत कार्य न कर सकता। शङ्कराचार्य ने सोलह वर्ष के होने के पहले ही वेदान्त-सूत्रों का भाष्य लिख डाला था। क्यों? पूर्वजन्म की सञ्चित विद्वत्ता के संस्कार के बल पर। वीर्य-रूप से उनकी पूर्वजन्म-जात विद्वत्ता बनी थी। अतएव

थोड़े ही परिश्रम से वह जागृत हो उठी। आशुकवि अयोध्यानाथ धाराप्रवाह कविता करते जाते हैं। यह भी पूर्वजन्म के संस्कार ही का फल है। पास्कर नामक एक विद्वान् ने बारही वर्ष की उम्र में भूमिति-शास्त्र के सरल प्रमेय ढूँढ़ निकाले थे। मोज़ार्ट नाम के एक गवैये ने चार ही वर्ष की उम्र में गीत बना डाले थे। आठ ही वर्ष की उम्र में कालबर्न, बिना स्लेट-पेन्सिल की सहायता के, आठ संख्याओं का षोडशघात और करोड़ों का घनमूल तत्काल बतला देता था! ये सब अलौकिक घटनायें पूर्वजन्म ही के संस्कारों का विजृम्भण हैं।

[नवम्बर १९०८



१०—पुनर्जन्म के प्रत्यक्ष प्रमाण

[१]

पुनर्जन्म में इस देश के लोगों का पूरा विश्वास है। विद्वान्, मूर्ख, युवा, जरठ, स्त्रियाँ और बच्चे तक समझते हैं, और विश्वास करते हैं, कि इस जन्म के पहले भी वे किसी न किसी योनि में ज़रूर थे और इस शरीर के छोड़ने पर भी वे कहीं न कहीं ज़रूर उत्पन्न होंगे। स्पिरिचुएलिज़म, अर्थात् आत्मविद्या, के बल से त्यक्त-शरीर आत्माओं को—यदि उनका पुनर्जन्म न हुआ हो—हम लोग मनुष्य-चक्र की सहायता से बुला सकते हैं और उनसे वार्तालाप कर सकते हैं। मुक्त मनुष्य चक्रगत मनुष्यों में से सबसे अधिक धार्म्मिक और सतोगुणी के शरीर में घुसकर अच्छी तरह बातचीत करते हैं। जिस समय हम झाँसी में थे, हमारे एक मित्र इस प्रकार की चक्र-क्रिया अकसर किया करते थे। ग्वालियर के एक प्राचीन मृत कवि (उनका नाम हम भूलते हैं) हम लोगों के चक्र से ख़ूब परिचित हो गये थे। चक्रसिद्धि होते ही वे आ जाते थे। उनको इत्र सूँघने और गाने से बड़ा शौक़ था। उन्होंने एक युवक को चुन लिया था। उसी के सिर वे आते थे और इत्र और फूल सूँघकर गाना सुनते थे। वे ख़ुद भी अच्छी-अच्छी ग़ज़लें गाते थे। उनका सबसे प्यारा फ़ारसी का यह शेर था—

चु कुफ़्र अज़ काबा बरख़ेज़द
कुजा मानद मुसल्मानी ।
चरा कारे कुनद आक़िल
के बाज़ आयद पशेमानी ॥

उनको हम लोग गीतगोविन्द सुनाया करते थे । "पश्यति दिशि दिशि रहसि भवन्तं। तदधर-मधुर-मधूनि पिबन्तम्" यह गीत आपको बहुत पसन्द था, इसको आप बार-बार दोहराते थे । श्रीमद्भागवत का—"नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय" आदि श्लोक भी वे बड़े प्रेम से सुनते थे । हमने पता लगाया तो मालूम हुआ कि ये कविवर ग्वालियर ही के थे और इनको मरे हुए कोई चालीस-पचास वर्ष हुए थे ।

हमारे चक्र में बाँदा का एक लड़का बड़ा उत्पात मचाता था । वह मुसल्मान था । वह बीच-बीच में, बिना प्रेरणा के, आ जाता था । दो-एक दफ़े जो उसने शरीर में सञ्चार किया तो वह बेतरह रोया और चिल्लाया । उसका पता लिखकर हमने बाँदा के स्टेशनमास्टर से उसका हाल दरियाफ़्त किया तो मालूम हुआ कि वह पाँच वर्ष पहले हैज़े से मर गया था । उस समय उसका विवाह होनेवाला था; उसकी उम्र कोई १८ वर्ष की थी ।

एक दिन के चक्र में एक लार्ड आये । उस दिन पण्डित मुरलीधर मिश्र, स्कूलों के डेप्युटी इन्सपेक्टर, भी मौजूद थे । अब आप इटावे में असिस्टण्ट इन्सपेक्टर हैं । लाट साहब

ने अपना नाम और पूरा पता दिया और कहा कि कलकत्ते में उस समय कोई जलसा है। उसी में शामिल होने के लिए वे जा रहे हैं। उन्होंने ऐसी अच्छी अँगरेज़ी में बातचीत की कि हम लोग दङ्ग हो गये। जिसके सिर वे आये थे वह बेचारा मुश्किल से दो-चार टूटे-फूटे वाक्य अँगरेज़ी में बोल सकता था।

इस प्रकार की मुक्त आत्माओं से यदि शुद्ध भाव से पूछा जाय तो बहुत सी अच्छी-अच्छी बातें मालूम हो सकती हैं। इनमें से हमने कई एक मृत मनुष्यों के विषय में प्रश्न किया। उनमें से कई हमारे कुटुम्बी भी थे। मालूम हुआ कि कई का तो पुनर्जन्म हो गया; पर कई अभी मुक्त ही अवस्था में हैं। उनमें से, हमारी प्रार्थना पर, उन्होंने एक-आध मुक्त आत्मा से हमारा परिचय भी कराया। एक दिन हमने ग्वालियर के कविजी से कहा कि आप कालिदास या भवभूति को, यदि वे मुक्त हों तो, बुलाइए। इस पर कविजी बेतरह अट्टहास करके हँसे। कोई पाँच मिनट तक आप हँसते रहे। आपने कहा कि भवभूति का हाल यहाँ किसी को नहीं मालूम। हाँ, कालिदास को लोग जानते हैं। पर वे कहाँ हैं, किस दशा में हैं, पुनर्जन्म को प्राप्त हो गये हैं, या कहीं किसी अन्य लोक में हैं—इसका पता उनको मालूम नहीं। आपने दिल्लगी में पूछा कि शङ्कराचार्य या श्रीकृष्ण से भी बातचीत करने को हम लोगों का जी चाहता है या नहीं ?

भारतवासियों को पुनर्जन्म पर विश्वास करने के लिए प्रमाणों की ज़रूरत नहीं। पर विलायती पण्डितों को पुनर्जन्म पर कम विश्वास है। उनको सब बातों में प्रमाण चाहिए। ख़ुशी की बात है, उनके लिए भी पुनर्जन्म के प्रमाणों का उपक्रम हो रहा है। कर्नल डिरोचाज़ एक फ़रासीसी पण्डित हैं। आपने एक विलायती मासिक पत्र में एक लेख प्रकाशित किया है। उसमें आप कहते हैं कि मैं बहुत दिनों से इस बात की परीक्षा कर रहा हूँ कि मनुष्य अपने पहले जन्मों की बातें जान सकता है या नहीं। जाँच का फल अच्छा हुआ है। प्राणपरिवर्तन (मेसमेरिज़्म) सम्बन्धी पाश देकर मनुष्य को सुला देने से अक्सर अपने पूर्वजन्मों का स्मरण हो आता है। पहले विद्यमान जन्म के पिछले जन्म का स्मरण होता है; फिर उसके पहले का; फिर उसके पहले का; इसी तरह यह लगाव दूर तक चला जाता है। उलटे पाश देने पर जब मनुष्य अपनी स्वाभाविक दशा में आ जाता है तब भी उसे अक्सर पूर्वजन्म-सम्बन्धिनी स्मृति नहीं भूलती। पर इस दशा में उसे स्मरण करने के लायक़ सबसे दूर के जन्म की पहले याद आती है; फिर धीरे-धीरे उसे वर्त्तमान जन्म के पासवाले जन्मों की।

बनारस-वासिनी मेम साहब, एनी ब्यसंट, की सूचना के अनुसार, दिसम्बर १९०४ में, कर्नल डिरोचाज़ ने एक फ़रासीसी यञ्जिनियर की लड़की पर प्राणपरिवर्तन विद्या का प्रयोग

किया। लड़की अपने बाप के साथ सीरिया प्रान्त में रही थी। वहाँ उसका बाप यञ्जिनियर था। वहाँ, ९ वर्ष की उम्र तक, उसने अरबी लिखना-पढ़ना सीखा था। बाप के मरने पर वह फ़्रांस आई। प्रयोग के लिए कर्नल साहब ने उसी को चुना। पाश देते-देते जब वह सो गई तब उसने अपनी दाहिनी तरफ़ पहले नीले, फिर लाल रङ्ग की एक छाया को देखा। कुछ देर में उसका सूक्ष्म शरीर उसके पाञ्चभौतिक शरीर से बिलकुल ही अलग हो गया। कोई एक गज़ के फ़ासले पर बाँईं तरफ़ उस लड़की ने अपने सूक्ष्म शरीर को लाल और नीले रङ्ग में देखा। वह शरीर उसके पञ्चभूतात्मक शरीर से एक आभामयी रस्सी से बँधा सा था। जब कर्नल ने उलटी पाशें देकर उसे जगाना शुरू किया तब उसके सूक्ष्म शरीर के पहले के से दो रूप हो गये। एक नीला, दूसरा लाल। धीरे-धीरे वे उसके भूतात्मक शरीर में प्रविष्ट हो गये।

इस लड़की का नाम है मेरी मेव। पूछने पर उसने बतलाया कि मेरी आत्मा सफ़ेद अग्नि-शिखा के समान है। उसका आकार प्रकाशमयी उँगली के बराबर है। उसे वह अपने भूतात्मक शरीर और सूक्ष्म शरीर के बीच में देखती है। कर्नल साहब, प्रयुक्त दशा में, जब मेव से कहते हैं कि तुम अपनी वर्त्तमान उम्र से कम उम्र की हो जाओ तब वह वैसा ही करती है। उसकी उम्र १८ वर्ष की है। आज्ञा पाते

ही वह १६, १४, १२ और १० वर्ष की हो जाती है। वह अपने शरीर को उसी दशा में देखती है जिस दशा में वह पूर्वोक्त उम्र में था। १० वर्ष की होने पर जब उससे पूछा जाता है कि तुम कहाँ हो तब वह कहती है—"मारसेल्स में"। यह उत्तर ठीक है। वह इस उम्र में वहीं थी। इसी तरह वह दो वर्ष की उम्र तक का हाल बतलाती है। पर एक वर्ष की होने पर वह बोल नहीं सकती। इस जन्म के पहले की बातें धीरे-धीरे उसे याद आती हैं। वह कहती है कि किसी अज्ञात शक्ति ने मुझे पुनर्जन्म दिया। मेरे सूक्ष्म शरीर ने मेरे भौतिक शरीर के पैदा होने के कुछ ही पहले उसमें प्रवेश किया। पहले वह मेरी माँ के आसपास था।

मेव कहती है, मेरा नाम इसके पिछले जन्म में लीना था। मैं ग्रेट-ब्रिटन में एक मछुवे की लड़की थी। २० वर्ष की उम्र में मेरी शादी हुई। मेरे एक सन्तति हुई। दो वर्ष की उम्र में वह मर गई। मेरे पति का रोज़गार मछली मारने का था। उसका मछलीमार जहाज़ एक दफ़े तबाह हो गया। मेरे पति की मृत्यु उसी से हुई। मुझे असह्य दुःख हुआ। मैं भी समुद्र में डूबकर मर गई। मछलियों ने मेरे शरीर को खा लिया। मुझे उस समय कुछ नहीं मालूम हुआ। मैं हवा में मिल गई। मैंने वहाँ प्रकाशमयी आत्माओं को देखा। पर उनसे बोलने की मुझे अनुमति नहीं मिली। इस दशा में मुझे कोई तकलीफ़ नहीं हुई। न मैं ख़ुश ही थी, न नाख़ुश।

मैंने अपने पति और सन्तति को बहुत ढूँढ़ा, पर मुझे उनमें से एक भी न मिला।

तब मेव से कहा गया कि तुम लीना के पहले जन्म में प्रवेश करो और उसका भी वृत्तान्त बतलाओ। इस पर उसने कहा—मैं "अन्धकार" में हूँ। मुझे तकलीफ़ है। पर वह तकलीफ़ कैसी है, मैं नहीं बयान कर सकती। मुझे याद पड़ता है, मैं लुई, अट्ठारहवें, के समय में हूँ। मैं आदमी हूँ। मेरा नाम मावील है। मैं पेरिस के एक दफ़्तर में कर्म्मचारी हूँ। लोग गलियों में लड़ रहे हैं और ख़ून ख़राबा कर रहे हैं। मैं भी उनमें शामिल हूँ। मैंने भी कई आदमियों को मार डाला। मुझे मारने में मज़ा आता है। मैं बुरा आदमी हूँ। ५० वर्ष की उम्र में मैं बीमार पड़ा। मैंने नौकरी छोड़ दी। इसके कुछ ही दिनों बाद मैं मर गया। मुझे अपने मृतक संस्कार तक की बातें स्मरण आ रही हैं।

इसके बाद कर्नल साहब ने मेव को उसके और दो पिछले जन्मों का स्मरण करने के लिए कहा। एक का तो उसे स्मरण अच्छी तरह हो आया। उस जन्म में वह स्त्री थी। उसकी शादी एक अमीर आदमी से हुई थी। उस जन्म की भी बहुत सी बातें उसने बतलाईं। ४५ वर्ष की उम्र में क्षय रोग से उसकी मृत्यु उस जन्म में हुई। मृत्यु के समय का दृश्य भी मेव के चेहरे पर देख पड़ा। इसके बाद वह "अन्धकार" में फिर लुप्त हो गई। उस जन्म के पहले जन्म में

मेव लड़कपन ही में मर गई। उसके भी पहले की बातें स्मरण करने में मेव को बहुत प्रयास पड़ने लगा। इससे कर्नल साहब ने उसे उस तरफ़ नहीं जाने दिया।

कर्नल साहब कहते हैं कि यदि मेव के पूर्व-जन्मधारी स्त्री-पुरुषों का पता किसी दूसरे द्वारा लग जाय कि वे सचमुच ही विद्यमान थे तो आत्मा का अविनाशित्व और पुनर्जन्म सप्रमाण सिद्ध हो जाय। अर्थात् आपका सन्देह अभी बना हुआ है।

[नवम्बर १९०५

[२]

पुनर्जन्म की एक बहुत ही आश्चर्य-जनक घटना ग्वालियर के "जयाजी-प्रताप" नामक समाचारपत्र में प्रकाशित हुई है। उस घटना से सम्बन्ध रखनेवाला लेख ज्यों का त्यों नीचे उद्धृत किया जाता है। यह लेख क्या, जिला भिण्ड के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट की एक रिपोर्ट है। भाषा इसकी अदालती उर्दू है।

मौज़ा नुनहटा ज़िला भिण्ड का एक ठकुराइसी गाँव है। वह क़सबे भिण्ड से सात मील के फ़ासले पर वाक़ै है। (भिण्ड रियासत ग्वालियर में है।) कुछ अर्सा हुआ कि वहाँ के एक कायस्थ पटवारी मुसम्मी काशीराम से चन्द ठाकुर ज़मींदारों की अदावत हो गई थी, जिसका नतीजा यह हुआ कि नवम्बर सन् १९०८ में एक रोज़ सुबह पाँच बजे काशीराम, जब कि वह घोड़ी पर सवार होकर भिण्ड को आ रहा था, बन्दूक़ और तलवार से क़त्ल किया गया। उसके क़त्ल

के मुक़द्दमे में अदालत में यह बात साबित हुई कि फ़िल वाक़ै क़ातिल एक ठाकुर मुसम्मी छोटेलाल था। मगर वह रोज़ क़त्ल से फ़रार हो चुका था। इसलिए वह मुक़द्दमा दाख़िल दफ़्तर कर दिया गया। इस मिसल में काशीराम मक़तूल के लाश की जो पोस्टमार्टम एक्ज़ामिनेशन रिपोर्ट शामिल है उससे ज़ाहिर है कि मक़तूल के अलावा और ज़रबात के सीने में गोली मारी गई और सीधे हाथ की अँगुलियाँ तलवार से काटी गईं। मिसल से यह बात भी ज़ाहिर होती है कि अव्वल बन्दूक़ मारी गई, बाद को तलवार से अँगुलियाँ काटी थीं, जिसकी वजह यह ज़ाहिर की गई है कि छोटेलाल (क़ातिल) को काशीराम के ख़िलाफ़ बड़ी शिकायत यह थी कि काशीराम ने काग़ज़ात पटवारी में ऐसे कुछ ग़लत इन्दराज किये थे जिनसे छोटेलाल के कुछ हुक़ूक़ ज़ायल होते थे। छोटेलाल ने यह कहकर सीधे हाथ की उँगलियाँ काटी थीं कि "इन्हीं उँगलियों से तूने (यानी काशीराम ने) ग़लत इन्दराज किये हैं।"

इस मौज़े नुनहटा से छै-सात कोस के फ़ासले पर एक मौज़ा वीसलपुरा वाक़ै है। इस मौज़े में मुसम्मी मिट्ठीलाल के एक लड़का सुखलाल नामी, ता० ३१ जनवरी सन् १९०९ को पैदा हुआ, जिसके हाथ में पूरी उँगलियाँ नहीं हैं; यानी छोटी उँगली सिर्फ़ आधी है और अँगूठा सिर्फ़ ¼ है। बाक़ी उँगलियां क़तई नहीं हैं। और उसके सीने में गोली का सा निशान है। सीने की कुछ हड्डियाँ अन्दर को मुड़ी हुई हैं।

इस लड़के के मौजूदा अलामात का सार्टीफ़िकेट दस्तख़ती सब-असिस्टेण्ट-सर्जन भिण्ड शामिल किया जाता है।

जब यह लड़का बोलने के क़ाबिल हुआ तो उसके वाल्देन ने उससे यह सवाल किया कि "तेरे सीधे हाथ को बनाना क्या बेमाता भूल गई?" तो लड़के ने आप ही आप यह जवाब दिया कि छोटेलाल ठाकुर, नुनहटावाले ने मेरा हाथ काटा था। मैं पहले जन्म में कायस्थ था और काशीराम मेरा नाम था। मैं घोड़ों पर सवार था तब बन्दूक़ मारी और तलवार से हाथ काटा था। लड़के के माँ व बाप के हल्फ़िया बयानात क़लमबन्द किये गये हैं। सुखलाल के वाल्देन को अच्छी तरह से समझा दिया गया कि जो कुछ बचपन से लड़के ने कहा हो वही बयान करे और उन्होंने मुझे यक़ीन दिलाया है कि जो कुछ उन्होंने बयान में लिखवाया है वह बिलकुल वही है जो लड़के ने अव्वल मर्तबा कहा था। उनके बयानात की ताईद मुसम्मियान टीकाराम, मनराखन व रामसिंह साकिनान देह मज़कूरा भी करते हैं। इनके बयानात से यह बात भी ज़ाहिर होती है कि यह लड़का पहले कुछ ज़्यादह बातें बयान करता है (था) और अब कुछ-कुछ वाक़यात भूलता जाता है।

इस लड़के की उम्र इस वक्त आठ साल है। जन्म-पत्री की नक़ल शामिल की गई है। उसका बयान है कि उसका हाथ छोटेलाल ने काटा। उस वक्त वह कायस्थ था

और काशीराम नाम था। उसके छाती में बन्दूक़ मारी थी जब कि वह घोड़ी पर सवार था। इससे ज़्यादा और मुफ़स्सिल वाक़यात उसको याद नहीं है। असनाय गुफ़्तगू में उसने अपने हाफिज़ा पर ज़ोर डालकर बतलाया कि जिस मुक़ाम पर क़त्ल किया गया था वहाँ पीपल का दरख़्त है। सुबह का वक्त़ था। उसने यह भी कहा कि पहले बन्दूक़ मारी गई, फिर तलवार से हाथ काटा गया। क़ातिल का नाम उसको बचपन से ही याद है। क़ातिल के नाम के साथ 'काका' कहा करता है? उससे जब यह पूछा गया कि पहले जन्म में तू तो कायस्थ था और छोटेलाल ठाकुर था, फिर वह तेरा काका कैसे हुआ? तो उसने जवाब दिया कि बचपन से ही मैं उसको "क का" कहता था। मैंने यह तमाम तहक़ीक़ात मौज़े वीसलपुरा में पहुँचकर की थी। और बिलकुल Inprejudiced mind से वाक़ई अम्र के दरयाफ़्त की कोशिश की गई है। लड़के को बहुत प्यार के साथ यह समझा दिया था कि जो बात तुमको याद हो उतनी ही कहना, किसी शख़्स की कही हुई मत बतलाना। और उसने जवाब दिया कि जिस क़दर उसको याद है उसी क़दर वह कहता है।

इस पाँच बरस के जमाने में जब से कि इस लड़के ने बोलना शुरू किया है, काशीराम के क़त्ल के वक़ूए के मुतअल्लिक़ बहुत सी बातें बतौर चर्चे के इस मौज़े में व नीज़ आसपास के मौज़ों में फैल रही थीं। मसलन यह कि काशीराम

के साथ उसका हकीकी भाई भी क़त्ल किया गया था, जो दूसरी घोड़ी पर सवार था। काशीराम के तीन भाई थे। यह बातें सुखलाल भी सुनता रहा है। अगर सुनी हुई बातों को वह कहता तो यह सवालात करने पर कि "तेरा भाई भी तेरे साथ था", "वह भी क़त्ल हुआ या नहीं", "तेरे और भी भाई थे", सुखलाल सब बातों का जवाब देता। मगर बर अक्स इसके उसने साफ़ कहा कि उसको याद नहीं है। इससे ज़ाहिर है कि इस क़त्ल के बाबत उसको कुछ बातें याद नहीं रहीं, बल्कि चन्द बातें याद रह गईं, जिनको वह बिला कमोकाश्त बयान करता है।

जो वाक़ेआत उसने बयान किये हैं उनका मुक़ाबिला मिसल मुक़द्दमा क़त्ल काशीराम से करने से हस्ब ज़ैल बातें बिलकुल मिलती हैं—

अ—डाक्टरी सार्टीफ़िकेट व मैजिस्ट्रेट के नोट में, जो मुलाहिज़ा लाश मक़तूल के वक्त लिखा गया, वह दोनों निशानात इस वक्त सुखलाल के जिस्म पर मौजूद हैं।

ब—सुबह का वक़ूआ होना और काशीराम का घोड़ी पर सवार होना मिसल से साबित है।

स—पहले बन्दूक़ मारी गई और फिर तलवार से हाथ काटा गया। यह भी मिसल की तहक़ीक़ात से साबित है।

ज—जाय वक़ूआ के पास दरख़्त पीपल का होना नक़शा मौक़ा से साबित है।

इन तमाम वाक़आत पर ग़ौर करने व लड़के के तर्ज़े बयान को मद्दे नज़र रखते हुए लड़के सुखलाल का बयान बिलकुल सच्चा व उसका हाफ़िजा बिलकुल दुरुस्त मालूम होता है।

तमाम हालात मुन्दर्जे बाला से एक मज़बूत रुजुहान तबिअत, जो सबूत का दर्जा रखता है, इस तरफ़ माइल होता है कि वह जीव, जिसका शरीर, बशक्ल काशीराम क़त्ल किया गया था, मिट्ठीलाल के यहाँ पैदा हुआ। चूँकि काशीराम का क़त्ल निहायत ही वहशतनाक़ तरीक़े पर बेदर्दी के साथ किया गया था, इसलिए मक़तूल की रूह पर इस क़दर गहरा असर हुआ कि, हमल मादर में वह हर वक्त़ इस बेरहमी के फ़ेल का ख़याल करती रही, जिसका नतीजा यह हुआ कि, उसके जिस्म में फ़ितरतन वह नुक़्स पैदा हो गये, जो आज उसके जिस्म पर नमूदार हैं, यानी दाहिने हाथ का मुकम्मिल न होना और सीने पर गाली का निशान होना। वर्ना हरगिज़ यह समझ में नहीं आता कि एक आठसाला लड़के के वाल्देन व उनके हम सायगान ने क्यों एक झूठा क़िस्सा तैयार कराकर उसको पढ़ा दिया! बल्कि गाँव के लोगों की यहाँ तक ख़ामख़्याली है कि उनको अन्देशा है कि काशीराम के पसमांदगान मार्फ़त सरकार इस लड़के को जबरन अपने मौजूदा माँ-बाप से अलहद्दा कराकर ख़ुद हासिल न कर लें; या छोटेलाल क़ातिल या उसके रिश्तेदारान इस लड़के को, जो उसके गुनाह अज़ीम का अफ़शा करनेवाला पैदा हुआ है, क़त्ल न कर डालें।

इन अनपढ़ सीधे-साधे गाँववालों के दिलों में ऐसा अन्देशा होते हुए यह बात हरगिज़ क़यास में नहीं आती कि गाँववालों ने महज़ एक दिल्लगी के लिए यह क़िस्सा तैयार कराकर इस लड़के को सिखा दिया हो।

इस तमाम वाक़आ के मुतअ़ल्लिक़ यह बात ज़्यादा ग़ौर के क़ाबिल मालूम होती है कि काशीराम के क़त्ल होने के दो महीने पच्चीस रोज़ बाद सुखलाल पैदा हुआ। अब सवाल यह पैदा होता है कि बच्चा पैदा होने के पहले क्या रूह अर्से मज़कूरे बाला में पड़ जाती है या इससे पेश्तर? इसके बाबत जिन्होंने इस सब्जेक्ट को बग़ौर (Study) किया हो वह अच्छी तरह से ग़ौर कर सकते हैं। मैं इसके बाबत कुछ रायज़नी नहीं कर सकता। जो वाक़आत तहक़ीक़ात व मशाहिदे से ज़ाहिर हुए वह ऊपर दर्ज कर दिये गये हैं। नाज़रीन अपनी क़ाबिलियत व वक़ूफ़ियत के मुवाफ़िक़ नतीजा अख़ज़ फ़रमावें। इस मामले में जो बयानात लिये गये हैं उनका भी ख़ुलासा इस ग़रज़ से दिया जाता है कि पाठकों को इस अद्भुत रहस्य को समझने में और भी आसानी हो।

सुखलाल का बयान

नाम सुखलाल, बाप का नाम मिहीलाल, ज़ात ब्राह्मण, उम्र आठ साल, साकिन बीसलपुरा, पेशा खेती। मेरा यह हाथ छोटेलाल ने काटा है। छोटेलाल नुनहटा का रहनेवाला है। जब मेरा हाथ काटा गया, मैं कायस्थ था। मेरा नाम

काशीराम था। तलवार से मेरा हाथ काटा गया और छाती में बन्दूक़ से गोली मारी गई। पहले गोली मारी गई, पीछे हाथ काटा। जब मैं धरती पर गिर पड़ा तब हाथ काटा था। मैं घोड़ी पर चढ़ा हुआ था। चढ़े हुए ही में गोली मारी। घोड़ी का रङ्ग, कहाँ जा रहा था, कोई आदमी साथ था या नहीं, तुम्हारे कितने भाई थे, और छोटेलाल के दाढ़ी थी, वह घोड़ी पर सवार था, छोटेलाल बूढ़ा था या जवान—इन बातों के जवाब में सुखलाल ने कहा, मुझे याद नहीं। केवल इतना और बताया कि मैं छोटेलाल से 'कक्का' कहता था।

मिहीलाल का बयान

जब सुखलाल के बाप मिहीलाल से, जिसकी उम्र ५५ साल की है, बयान लिया गया तब उसने कहा —सुखलाल मेरा लड़का है। उसकी उम्र अन्दाज़न सात-आठ वर्ष की है। इसकी जन्मपत्री मौजूद है। नुनहटा हमारे गाँव से छै-सात कोस है। तीन या साढ़े तीन वर्ष की उम्र होगी तब सुखलाल ने अपने आप यह बात कही थी कि कक्का ने हमारा हाथ काट लिया। और कक्का ने पीपल के ढिंगा (पास) मार डाला। मैंने पूछा कि कौन काका तो कहा छोटेलाल नुनहटा का। मैंने यह भी पूछा कि तुम पहले जन्म में कायस्थ थे और छोटेलाल ठाकुर था, तो तुम उसे कक्का कैसे कहते हो। तो कहा, बचपन से कक्का ही कहते थे। यह कहा था कि छाती में बन्दूक़ मारी थी और हाथ तलवार से काटा था। पहले

बन्दूक़ मारी थी। जब गिर पड़ा तब हाथ काटा था। अपना नाम काशीराम बताता था, और कहता था कि मैं पटवारी था। मैंने कभी काशीराम पटवारी को नहीं देखा। अपने मकान का कुछ हाल नहीं बताता; सिर्फ़ लड़के का ज़िक्र करता था। जब यह पूछा गया कि कितने लड़के बताता, तब कहा मुझे ख़याल नहीं रहा। दिन चढ़े पीपल के पास मारना ज़ाहिर करता था। नुनहटे के बहुत से ठाकुर इसे देखने और पूछने आये थे। उन्होंने सुनकर कहा था कि यह ठीक कहता है। मैंने एक मर्तबा खिलाते वक़्त सुखलाल से कहा था कि क्या तेरा हाथ वैमाता बनाना भूल गई या क्या बात है। इस पर सुखलाल ने कहा कि छोटेलाल काका ने हाथ काट डाला है। हमारे गाँव में छोटेलाल नाम का कोई आदमी नहीं है। जिस वक़्त इसने कहा था, उस वक़्त वह बेसमझ बच्चा था। किसी ने सिखाया, बहकाया नहीं और न सिखाने बहकाने में उस वक़्त आ सकता था। सुखलाल के दो भाई और हैं, जो मज़बूत और अच्छे बदन के हैं। यही दुबला है। काशीराम पटवारी के घर का कोई आदमी नहीं आया था।

सुखलाल की माता का बयान

मेरा नाम बिटिया, बाप का नाम भोला, ज़ौजा मिहीलाल, जात ब्राह्मण, उमर ४५ साल, साकिन वीसलपुरा — सुखलाल मेरा लड़का है। मेरे पेट से पैदा हुआ है। तीन बरस की उम्र सुखलाल की थी, जब बातें करने लगा था।

दुआरे मानसों (दरवाजे़ पर आदमियों) से कहा करता था कि मेरा नाम काशीराम है। मुझसे पहले पहल सुखलाल ने कुछ हाल नहीं कहा। बाहर मर्दों में ही यह बात कही कि छोटेलाल ने मेरा हाथ काट लिया। मैंने भी पूछा तो यही कहा कि मेरा नाम काशीराम है। कक्का छोटेलाल ने तल-वार से हाथ काट लिया और बन्दूक़ मारी। अपने भाई, लड़कों और औरत का कुछ हाल कभी नहीं कहा। पीपल के पेड़ के पास बन्दूक़ मारना कहता था। हाथ कटा और छाती में निशान, ऐसा ही पैदा हुआ है। नौ महीने पूरे होने के बाद दसवें महीने के अन्दर पैदा हुआ था। इसके गर्भ में रहते और जन्म होने तक कोई ऐसी बात मुझ पर ज़ाहिर नहीं हुई जो अच-रज की हो। जैसे और लड़के पैदा हुए यह भी पैदा हो गया।

इसके बाद डिस्ट्रिक्-मैजिस्ट्रेट साहब ने टीकाराम, मन-राखन और रामसिंह ज़मींदारान व नम्बरदारान, मौज़ा वीसल-पुरा के बयान लिये, जिन्होंने सुखलाल, मिहीलाल और मिही-लाल की स्त्री के बयान की ताईद की। मनराखन नम्बरदार ने इतना और ज़्यादा बताया कि मैंने काशीराम पटवारी को देखा था। वह पतला-पतला सा था। ऐसा ही मुँह था, जैसा सुखलाल का। वह साँवला ज़्यादा था और यह कुछ गोरा-गोरा लगता है। रामसिंह ने माँ-बाप की बातों की ताईद के अलावा कहा कि इसकी और इसके और भाइयों की सूरत नहीं मिलती है। पढ़ने में होशियार है। यह लड़का चुप सा

रहता है। जब कोई कुछ पूछता है, तब जवाब दे देता है। अपनी ज़ात नहीं बताता।

[सितम्बर १९१७

[३]

"लीडर" पत्र के १२ अगस्त १९२६ के अङ्क में बरेली के वकील श्रीकैकेयीनन्दन-सहाय ने बालक विश्वनाथ के सम्बन्ध में जो पत्र छपवाया था उसका सारांश उन्हीं के मुख से नीचे दिया जाता है—

विश्वनाथ का जन्म ७ फ़रवरी १९२१ को बरेली के खन्नू महल्ले में हुआ। १॥ वर्ष का होते ही वह पीलीभीत के विषय में पूछपाछ करने लगा। उसने पूछा कि बरेली से पीली-भीत कितनी दूर है और मेरे पिता मुझे वहाँ कब ले जायँगे। तीन वर्ष का होने पर वह अपने पूर्व-जन्म की बातें विस्तार से बताने लगा।

मुझे हाल ही में प्रांतीय कौंसिल के भूतपूर्व सदस्य ठाकुर मोतीसिंहजी वकील से इस बालक की बात मालूम हुई। मैं २९ जून को बालक के पिता बाबू रामगुलाम और बालक विश्वनाथ से मिलने गया। मैंने बाबू रामगुलाम से पीली-भीत जाकर बालक की बताई बातों की सचाई की जाँच करने को कहा और ख़ुद भी साथ चलने को तैयार हुआ। १ अगस्त को हम लोग पीलीभीत गये। हम सीधे वहाँ के गवर्नमेंट हाई स्कूल गये। बालक ने उसे अपना स्कूल न बताया।

स्कूल का वर्तमान भवन नया है और हाल ही में बना है। विश्वनाथ ने अपने चचा का नाम हरनारायण, जाति कायस्थ, महल्ला गंज, पीलीभीत, उम्र २० साल और अविवाहित बताया था। अपने पड़ोसी का नाम सुन्दरलाल बताया था और कहा था कि उनके मकान में हरे रङ्ग का फाटक है। उनके पास एक तलवार और एक बन्दूक़ है और उनके सहन में नाच हुआ करता था। अपने मकान को उसने दो-मंज़िला बताया था, जिसमें स्त्री-पुरुषों के रहने के लिए अलग-अलग खण्ड था। उसमें गाने की महफ़िलें और दावतें अकसर होती रहती थीं।

जब हम लोग परलोकगत बाबू श्यामसुन्दरलाल के फाटक पर पहुँचे तब बालक ताँगे पर से उतर पड़ा और कहा कि यही बाबू सुन्दरलाल का हरा फाटक है। उसने उस सहन को भी बताया जिसमें नाच की महफ़िलें हुआ करती थीं। आसपास के दूकानदारों ने उसके कथन को ठीक बताया। मैंने फाटक को ख़ुद देखा। उस पर हरा वार्निश पुता था, जो बहुत दिन का हो जाने से बहुत धूमिल हो गया था। अनन्तर हम लोग स्वर्गीय लाला देवीप्रसाद रईस के मकान पर गये। बालक ने उसे अपना मकान बताया। उसने चिल्लाकर कहा कि यही हरनारायण का मकान है। हरनारायण लाला देवीप्रसाद के लड़के थे।

लड़के ने फाटक पर पहुँचते ही मकान को पहचान लिया। उसने वे स्थान भी बताये जहाँ वे शराब पीते, 'रोहू' मछली खाते और नर्तकियों का गाना सुनते थे लड़के से सीढ़ी

का स्थान पूछा गया, जिसे उसने मिट्टी और ईंटों के ढेर में भी ठीक-ठीक बता दिया। इसके बाद उसने ज़नाने कमरों को पहिचाना और कोठे के ऊपर एक कमरे का ख़ास तौर से हवाला दिया जिसमें स्त्रियाँ रहती थीं। कुटुम्ब में केवल श्री-व्रजमोहनलाल बच गये हैं, जो अलग एक मकान में रहते हैं। उनसे लाला हरनारायणलाल और उनके पुत्र का एक पुराना अस्पष्ट फ़ोटो मँगाया गया। बहुत से लोगों के सामने लड़के ने तुरन्त लाला हरनारायणलाल के फ़ोटो पर अपनी उँगली रख दी और फ़ोटो में एक कुर्सी पर बैठे हुए एक लड़के को दिखाकर कहा—"यह मैं हूँ और वे लाला हरनारायणलाल हैं"। यह अद्भुत बात हुई और इससे उसका श्रीहरनारायण का पुत्र लक्ष्मीनारायण होना निश्चित हो गया।

इसके बाद हम लोग उसे पुराने गवर्नमेंट हाई स्कूल ले गये, जिसे उसने तुरन्त पहचान लिया और अपना स्कूल बता-कर उसकी परिक्रमा की।

लड़के को एक जोड़ी तबला दिया गया जिसको उसने बड़ी आसानी से बजाया। उसके पिता श्रीरामगुलाम ने मुझे बताया कि लड़के ने अपने जीवन में कभी तबला देखा भी नहीं है। लोगों ने लड़के से बार-बार उस वेश्या का नाम पूछा जिसके साथ वह पूर्व जन्म में रह चुका था। लड़के ने उदासीनता के साथ पद्मा नाम लिया जिसे लोगों ने ठीक बताया। इस मामले की सूचना जिले के पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट

और सिविल सर्जन को दे दी गई थी। पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट आये। लड़के को देखा और अपनी मोटर में बिठाकर ले गये।

[सितम्बर १६२६

[४]

"लीडर" के १ अक्तूबर १६२६ के अङ्क में बाँदा के प्रासीक्यूटिंग इन्सपेक्टर श्रीपद्मसिंह ने निम्नलिखित समाचार प्रकाशित कराया था—

कोई आठ वर्ष की बात है कि मथुरा ज़िले के पटियाली गाँव के एक पेंशनयाफ़्ता डिप्टी कलक्टर की स्त्री का देहान्त हो गया। उसके कुछ समय बाद ही पास के एक गाँव में किसी ब्राह्मण के यहाँ एक लड़की पैदा हुई। यह ब्राह्मण भीख माँगकर अपना निर्वाह करता था। चार-पाँच वर्ष की होने पर लड़की ने अपने पिता को भीख माँगने से मना किया और कहा कि मुझे पटयाली के डिप्टी साहब के घर ले चलो; वहाँ मेरा बहुत सा धन गड़ा है। ब्राह्मण लड़की को डिप्टी साहब के पास ले गया। उन्हें देखते ही उसने घूँघट काढ़ लिया। उसने डिप्टी साहब को अपना परिचय दिया और मुहल्ले की स्त्रियों को पहचाना। डिप्टी साहब के पूछने पर उसने कुछ वैवाहिक रहस्य भी प्रकट किये। इसके बाद उसने वे स्थान बताये जहाँ धन गड़ा था। खोदने पर कई हज़ार की क़ीमत के आभूषण हिफ़ाज़त से रक्खे हुए पाये गये।

[अक्तूबर १६२६

[५]

पूर्व-जन्म की स्मृति बनी रहने के जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं उनके सिवा और भी अनेक उदाहरण, इसी तरह के, दिये जा सकते हैं। मदरास से एक सामयिक पत्र अँगरेज़ी-भाषा में निकलता है। उसका नाम है—थियासफ़िस्ट। वह उस थियासफ़िकल सोसायटी का पत्र है जिसकी अध्यक्ष श्रीमती ऐनी बेज़न्ट हैं। उसमें इस तरह की घटनाओं का वर्णन पहले भी निकलता रहा है और अब भी यदा-कदा निकल जाता है। पर उन सब घटनाओं के उल्लेख की आवश्यकता यहाँ नहीं। हाँ, इधर, कुछ समय से, इन विषयों में और लोगों ने भी दिलचस्पी दिखाना आरम्भ किया है। उनमें से एक महाशय का नाम है—कैकेयानन्दन सहाय, वकील, बरेली। दूसरे महाशय हैं रामगोपाल मिश्र, डिपटी कलेक्टर, उरई। तीसरे महाशय हैं—राव-बहादुर श्यामसुन्दरलाल, सी० आई० ई०। आप शायद अलवर राज्य में वहाँ के महाराज साहब के दीवान हैं। इस विषय की ओर अब बहुत आदमियों का ध्यान आकृष्ट हो रहा है। इसलिए अब एक परिषद्, समिति या सोसायटी की स्थापना होनेवाली है। इस समिति के सभ्य पूर्व-जन्म की स्मृति आदि से सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओं की वैज्ञानिक जाँच करेंगे। यदि शिक्षित भारतवासियों का ध्यान इस ओर इसी तरह बढ़ता ही गया तो, सम्भव है, आगे चलकर, इस सम्बन्ध में अनेक अज्ञात

तत्त्वों का पता लगे और यह मालूम हो जाय कि किन कारणों के अस्तित्व में पूर्व-जन्म की स्मृति बनी रहती है और किनके अभाव में वह नष्ट हो जाती है। कुछ उदाहरणों से ज्ञात होता है कि जन्मान्तर में लिङ्ग-विपर्यय भी हो सकता है अर्थात् इस जन्म में जो पुरुष है वह अगले जन्म में स्त्रीत्व प्राप्त कर सकता है। इसी तरह एक देश के निवासी, यथा इँगलेंड के, दूसरे देश, यथा भारत में, जन्म ग्रहण कर सकते हैं।

अभी, हाल ही में, पूर्व-जन्म की स्मृति के कुछ प्रमाण और भी मिले हैं। उनका वर्णन इलाहाबाद के "लीडर" तथा और जगहों से भी निकलनेवाले कई पत्रों में प्रकाशित हुआ है। इन घटनाओं का भी संक्षिप्त उल्लेख करके हम इस विषय के इस निबन्ध को समाप्त करना चाहते हैं। घटनाओं का वर्णन नीचे दिया जाता है—

ज़िला सीतापुर, तहसील सिधौली, में एक मौज़ा हीरपुर है। वहाँ पण्डित पुत्तूलाल ब्राह्मण रहते हैं। आपकी उम्र कोई ५८ वर्ष की है। १२ वर्ष तक आप कमालपुर के शफ़ाख़ाने में कम्पौंडर थे। आप अब पेंशन पाते हैं। आपके कई लड़के हैं। एक दफ़े आपकी स्त्री अपने एक लड़के के साथ अयोध्याजी गई। वहाँ से लौटने पर ९ महीने बाद उसने एक और पुत्र प्रसव किया। उसका नाम रक्खा गया सुन्दरलाल। यह बच्चा जब बोलने लगा तब उसने कहा, मेरा नाम सुन्दरलाल नहीं, हन्नेलाल है। मैं कायस्थ हूँ।

फ़ैज़ाबाद के कटरा-फूटा महल्ले का रहनेवाला हूँ। मेरे दो बच्चे हैं और स्त्री भी है। उससे पूछा गया कि फिर तुम यहाँ कैसे आये। उत्तर दिया कि जब मेरा मृत शरीर सरयू में फेंक दिया गया तब मेरी वर्त्तमान माँ वहीं स्नान कर रही थी। उसी के साथ मैं यहाँ चला आया। बच्चे की ये बातें सुनकर पुत्तूलाल और उनकी स्त्री ने बहुत कुछ पूजा-पाठ कराया और यन्त्र-मन्त्रों का भी सहारा लिया। तथापि ७ वर्ष की उम्र तक लड़का अपने पूर्व-जन्म की बातें नहीं भूला। फिर धीरे-धीरे भूल गया। इस समय उसकी उम्र १४ वर्ष की है। इस घटना की ख़बर राजा सूरजबख़्शसिंह को लगी। इस पर उन्होंने अपने ख़ज़ानची पण्डित भगवानदीन को फ़ैज़ाबाद भेजा। उनसे कहा गया कि सुन्दरलाल की बातों की जाँच वे वहाँ करें। वे वहाँ गये; पर फ़ैज़ाबाद में कटरा-फूटा नाम का कोई महल्ला न मिला। तब वे अयोध्या गये। वहाँ जाँच करने पर हन्नेलाल का मकान उन्हें मिल गया। उसकी स्त्री और बच्चों का भी पता लग गया। पन्द्रह वर्ष पहले हन्नेलाल प्लेग से मरा था। उसका शव सरयू में बहा दिया गया था। शव के साथ जानेवाले एक आदमी ने इस बात की तसदीक़ की। हन्नेलाल पूर्व-जन्म में लड़के पढ़ाता था। मरने के समय उसकी उम्र ४५ वर्ष की थी। उसकी विधवा अब तक जीवित है।

[लीडर, २९-९-२६

बाबू श्यामसुन्दरलाल हलद्वानी में स्टेशन-मास्टर हैं। आपने अपनी लड़की की कथा अख़बारों में इस प्रकार प्रकाशित की है—

मेरे एक लड़की है। सन् १९१९ ईसवी के आषाढ़ में उसका जन्म बरेली में हुआ। १९२२ के श्रावण में मैं यात्रा करने मथुरा गया। मथुरा से गोकुल पहुँचा। साथ में मेरी स्त्री और लड़की भी थी। गोकुल में एक घर के पास पहुँचते ही मेरी लड़की गोद से उतर पड़ी। उस घर के द्वार पर एक वृद्ध स्त्री बैठी हुई थी। उसे हटाकर वह भीतर चली गई। मेरी स्त्री भी उसके पीछे-पीछे उस घर में घुस गई। लड़की ने वहाँ उस बूढ़ी स्त्री से अपनी दावात और पट्टी माँगी। इसके बाद उसने घर की और भी कुछ चीज़ों की देखभाल की और अपनी माँ से कहा कि तुम पान खा लो और अपने घर जाव। मैं यहीं रहूँगा; यही मेरा घर है। यह दशा देखकर वह बूढ़ी स्त्री रोने लगी। इसके बाद ये सब लोग यमुना-तट को गये। साथ वह स्त्री भी गई। वहाँ कछुवों को देखकर लड़की ने कहा—"एक दफ़े तुम मुझे इसी यमुना में डुबो चुके हो। अब क्या फिर भी डुबो दोगे?" लड़की ने वह जगह भी बताई जहाँ वह नहाते वक़्त डूब गई थी। यहाँ उसने अपने लिए पुल्लिङ्ग का प्रयोग किया। इस पर उस बूढ़ी स्त्री ने बताया कि मेरा १२ वर्ष का लड़का, ४ वर्ष हुए, उसी जगह डूबकर मरा था जो जगह लड़की बता रही

थी। उस समय लड़की की उम्र ३ वर्ष १ महीने थी। गोकुल में अपने पूर्व-जन्म का घर देखते ही उसे उस जन्म की बातें याद आ गई थीं। इस घटना से यह भी सिद्ध हुआ कि पूर्व-जन्म में पुरुषत्व पाया हुआ प्राणी अगले जन्म में स्त्रीत्व भी प्राप्त कर सकता है।

[लीडर, २३-६-१६२६

बरेली के वकील बाबू कैकेयीनन्दनसहाय का बयान है कि वहाँ बरेली में कोई लाला रामचरणलाल रहते हैं। उनका मकान महल्ला सैदपुरिया में है। उनके एक लड़का है। नाम है बजरङ्गबहादुर। उसे वकील साहब ख़ुद देखने गये। उसके सम्बन्ध की घटना उन्हीं के मुँह से सुनिए—

इस लड़के का रङ्ग गोरों का जैसा बिलकुल गोरा है। बाल भूरे हैं। आँखें अजीब तरह की हैं। चार वर्ष की उम्र तक यह लड़का अपना खाना छुरी और काँटे से खाता रहा। यह अपना नाम आर्थर (Arthur) बताता है और कहता है कि मेरे दो भाई और थे; माँ भी थी; पर बाप मर गया था। यह कहता है कि योरोप के गत युद्ध में मैं मारा गया था। इसकी गर्दन और सिर में गोली लगने के निशान हैं। मारे जाने के समय इसकी उम्र २८ वर्ष की थी। इस लड़के का कथन है कि मैं एक गोरा सिपाही था। क़वायद-परेड करता था और फ़ौजी खेल भी खेला करता था। जिन लोगों ने इसके मुँह से इसकी ये बातें सुनी हैं वे इनकी सचाई की

तसदीक़ करते हैं। गत वर्ष तक इसे अपने पूर्व-जन्म की बातें याद थीं। पर अब यह उन्हें भूलता जाता है।

[लीडर, १६ आक्टोबर १९२६

इस लड़के के बयान से मालूम होता है कि भिन्न देशों के वासी और भिन्न धर्म्मों के अनुयायी अगले जन्म में इतर देशों और इतर धर्म्मावलम्बियों के घर में भी जन्म ले सकते हैं।

राव-बहादुर बाबू श्यामसुन्दरलाल, सी० आई० ई० ने गिरिजादेवी नामक एक लड़की के जन्म-सम्बन्ध में जो लेख प्रकाशित कराया है उसका सारांश नीचे दिया जाता है। इस घटना का वर्णन इटावे के वकील, बाबू बदरीनारायण, बी० ए०, एल्-एल० बी० ने, अपने क़लम से, २० सितम्बर १९२६ को, लिपिबद्ध किया था। यह बयान गिरिजादेवी के पिता ख़ुद बाबूराम गुप्त और लड़की की माँ ने दिया था। वह इस प्रकार है—

इटावे में बाबूराम गुप्त, बी० ए०, एल्-एल० बी०, एक वकील हैं। आपके दो बहनें थीं—विष्णुदेवी और कृष्णदेवी। दोनों की शादी फ़र्रुख़ाबाद में हुई। बाबूराम के कोई औलाद न थी। इस कारण विष्णुदेवी अपनी भाभी (बाबूराम की स्त्री) से कहा करती थी कि यदि मैं मर गई तो तुम्हारी कोख से तुम्हारे ही यहाँ जन्म लूँगी। इससे तुम्हारा वन्ध्या-दोष दूर हो जायगा। विष्णुदेवी ने प्रसूति के समय, अपनी ससुराल फ़र्रुख़ाबाद में, २५ आक्टोबर १९०९ को शरीर छोड़ दिया। उसके कोई पौने दो वर्ष बाद, अर्थात्

२२ जून १९११ को, बाबूराम गुप्त की पत्नी के पेट से गिरिजा-देवी ने जन्म लिया।

जब गिरिजा कोई २ वर्ष की हुई तब वह अपनी माँ को भाभी और पिता को भाई कहने लगी। बाबूराम की माँ जीवित थीं। उनको वह माँ कहकर पुकारने लगी। पर ये बातें किसी को विशेष नहीं खटकीं।

एक दिन विष्णुदेवी के ससुर, लाला लुंगीलाल, इटावा आये और बाबूराम के घर गये। गिरिजा उस समय कोई २½ वर्ष की थी। वह बैठक में बैठी थी। लुंगीलाल को देखते ही उसने अपना मुँह ढक लिया और भीतर भाग गई। वह बोली कि लुंगी आया है। इससे मैं बाहर नहीं बैठ सकती। इस घटना पर भी किसी का विशेष ध्यान नहीं गया।

जब गिरिजा कोई आठ वर्ष की हुई तब कृष्णदेवी के सौतेले लड़के प्यारेलाल की शादी में उसे और उसकी माँ को फ़र्रुख़ाबाद जाना पड़ा। इन लोगों ने विष्णुदेवी के घर जाने का भी इरादा किया। इस बीच में लुंगीलाल ने अपना पुराना मकान बदल दिया था। उनको यह ख़याल हुआ कि विष्णुदेवी मरकर चुड़ैल हो गई है। अतएव इस घर में रहना अच्छा नहीं। उन्होंने विष्णुदेवी के नाम पर उस घर में एक चबूतरा भी बनवा दिया और दूसरे मकान में चले गये। इस दूसरे मकान में जब गिरिजा और उसकी माँ पहुँचीं तब गिरिजा बार-बार कहने लगी कि यह मकान मेरा

नहीं। उसने अपनी, अर्थात् विष्णुदेवी की, सास से कहा कि मुझे अपने घर ले चलो। तब लोगों को कुतूहल हुआ और वे गिरिजा को अपने पुराने मकान में ले गईं। वहाँ गिरिजा ने राई-रत्ती सब चीज़ों और कमरों को पहचाना और बताया कि यहाँ पर मैं सोया करती थी। चबूतरे को देखकर उसने उसका हाल पूछा और उसे खुदवा दिया। उसने कहा, मैंने प्रेत-योनि में जन्म नहीं लिया। तुम लोग इसी मकान में आकर रहो। उसने अपनी, विष्णुदेवी की, पहनने-ओढ़ने की ऊन की चीज़ें पहचानीं जो उसकी पूर्व-जन्म की सपत्नी (सौत) के पास थीं। उसके पूर्व-जन्म के पति बलदेवप्रसाद ने उसके मरने के बाद दूसरी शादी कर ली थी। उनकी उसी पत्नी के पास उसने अपनी चीज़ें देखीं और पहचानीं। उसने अपनी कई चीज़ें उठा लाने की इच्छा प्रकट की। वे सब तो उसे न मिलीं पर एक ट्रंक वह ज़बरदस्ती उठा लाई। उसने कहा, यह मेरे भाई का दिया हुआ है। इसे तो मैं ज़रूर ही ले जाऊँगी।

गिरिजा की उम्र अब कोई १५ वर्ष की है। वह फफूँद, ज़िले इटावे, के बाबू सरस्वतीनारायण, वकील, के लड़के को ब्याही है।

[लीडर, ८ आक्टोबर १९२६

११—ज्ञान

बँगला के प्रसिद्ध लेखक बङ्किमचन्द्र चैटर्जी ने इस विषय का विवेचन अपने एक लेख में किया है। नीचे का निबन्ध उसके तथा और कई पुस्तकों के अवलोकन का फल है।

१—कपिल-मुनि-कृत सांख्यशास्त्र के अनुसार ज्ञान ही से अपवर्ग की प्राप्ति होती है। यह मत सांख्यकार ही का नहीं, किन्तु प्रायः सभी दर्शनों का है। धूमयान, तड़िद्यन्त्र, सूक्ष्मदर्शक यन्त्र इत्यादि समस्त अघटित घटनायें ज्ञान ही के विजृम्भण का फल हैं। यह लौकिक वार्ता हुई। पारलौकिक विषय में ज्ञान से जब निःश्रेयस् तक की सिद्धि सम्भव है तब ईश्वर का अस्तित्व अथवा अनस्तित्व आदि प्रमाणित करना ज्ञान-साध्य समझने में कोई आपत्ति नहीं। अतः ज्ञान के विषय में हम कुछ कहना चाहते हैं।

२—जो कुछ हम जानते हैं वही ज्ञान है। परन्तु जानने के कई प्रकार हैं। पृथक्-पृथक् आचार्यों ने इन जानने के प्रकारों की पृथक्-पृथक् संख्या नियमित की है। उनमें से तीन मुख्य हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। शेष प्रकार इन्हीं तीनों के अन्तर्भूत समझने चाहिए।

३—नदी, पर्वत, गृह, वाटिका, सरोवर इत्यादि को हम नेत्रों से देखते हैं। अतएव इन ज्ञातव्य विषयों के साथ चक्षु-

रिन्द्रिय का संयोग होने से हमको यह ज्ञान होता है कि यह सरोवर है, यह नदी है, यह पर्वत है, इत्यादि। इस प्रकार के ज्ञान को चाक्षुष प्रत्यक्ष कहते हैं। यदि किसी मनुष्य से, जिसे सरोवर का ज्ञान हुआ है, हम पूछें कि तुमको क्या ज्ञान हुआ, तो सहस्रशः प्रयत्न करने पर भी सरोवर का नाम लिये बिना ज्ञान के आकार को वह कदापि स्पष्ट करके बतलाने में समर्थ न होगा। इससे विदित होता है कि ईश्वरीय सङ्केतानुसार जितने विषय हैं उनमें से एक-एक ने एक-एक विशिष्ट ज्ञान को बाँध सा लिया है।

इसी प्रकार, सायङ्काल, घर में बैठे हुए अकस्मात् बहिरुद्यान में मयूर की उच्च केका को श्रवण करने से श्रावण प्रत्यक्ष होता है। तथैव वहीं, उद्यान में, कुसुमित कुन्द की सुवास आने से घ्राणज प्रत्यक्ष होता है। इसी तरह त्वाच और रासन प्रत्यक्ष भी जानने चाहिए। यह पाँच प्रकार का प्रत्यक्ष ज्ञान पञ्चज्ञानेन्द्रिय—चक्षु, श्रवण, घ्राण, त्वचा और रसना—जन्य है। इसके अतिरिक्त मानस प्रत्यक्ष भी होता है; परन्तु मन अन्तरिन्द्रिय होने के कारण बहिर्विषयों के साथ उसका संयोग होना सम्भव नहीं; अतः अन्तर्ज्ञान-मात्र मानस प्रत्यक्ष के द्वारा होता है।

४—उपर्युक्त प्रकार का ज्ञान ज्ञान-कक्षा में तभी सन्निवेशित हो सकता है जब वह सर्वतोभाव से शुद्ध हो। अशुद्धता-दोष-दूषित होने से उसकी अतिव्याप्ति संशय अथवा भ्रम में हो जाती है।

एक आधार में दो कोटियों का अवलम्बन करने से जो ज्ञान होता है उसे संशय कहते हैं। यथा अँधेरे में किसी ने किसी मनुष्य को देखकर यह विकल्प किया कि यह मनुष्य है अथवा वृक्ष? तो ऐसे स्थल में वह यथार्थ ज्ञान नहीं, किन्तु केवल संशय कहा जायगा। इसी प्रकार जब, किसी पदार्थ के विषय में और का और ही ज्ञान होता है तब उसे भ्रम कहते हैं। यथा पीतल को सुवर्ण समझना इत्यादि। एतादृश संशयात्मक और भ्रमात्मक ज्ञान, विषयों का यथार्थत्व विदित होने पर विनष्ट हो जाता है। परन्तु एक प्रकार का आहार्य ज्ञान, जो जान-बूझकर होता है, पदार्थों का निश्चय हो जाने पर भी बना रहता है। यथा नाट्यशाला में शकुन्तला और दुष्यन्त को अवलोकन कर, यथार्थ में यह जानने पर भी कि यह शकुन्तला और दुष्यन्त नहीं, किन्तु कोई अन्य व्यक्ति उनके वेश में है, उस आहार्य ज्ञान का तिरोभाव नहीं होता।

५—दूसरे प्रकार का ज्ञान अनुमान ज्ञान कहलाता है। जब दो पदार्थों का नियत साहचर्य होता है, अर्थात् दोनों सदैव एक ही साथ रहते हैं, तब एक पदार्थ को जानकर दूसरे का भी ज्ञान हो जाना अनुमान के नाम से अभिहित होता है। अपने घर का द्वार बन्द करके भीतर बैठे हुए जब हम निकटस्थ वाटिका-स्थित मयूर की गम्भीर ध्वनि श्रवण करते हैं तब हमको ध्वनि का प्रत्यक्ष ज्ञान कर्ण द्वारा होता है; परन्तु मयूर का ज्ञान हमारे प्रत्यक्ष होने का विषय नहीं। कारण यह कि

उसे हम नेत्रेन्द्रिय द्वारा नहीं देख सकते। तब, कहिए, हमने किस प्रकार जाना कि यह मयूर की ध्वनि है? अनुमान द्वारा। क्योंकि हमने इसके पूर्व बहुत बार देखा है कि एतादृशी ध्वनि मयूर ही के कण्ठ से निकलती है। इसी प्रकार, यदि, उस समय, अथवा समयान्तर में, हमको कुसुमित केतकी का सुवास मिले तो हम उस सुवास का घ्राणज प्रत्यक्ष करके यह अनुमान करेंगे कि खदिरादि को सुगन्धित करने के लिए घर में, केतकी-पुष्प कहीं अवश्य रक्खा है। इस स्थान पर सुवास का ज्ञान प्रत्यक्ष का विषय और केतकी के अस्तित्व का ज्ञान अनुमान का विषय हुआ।

उपर्युक्त अनुमानद्वय में मयूर और केतकी "साध्य" हैं; केका और सुगन्ध उसके साधन के "हेतु" हैं; वाटिका और घर, जिनमें हेतु द्वारा साध्य की सिद्धि की गई है, "पक्ष" हैं। इनके अतिरिक्त "सपक्ष", "व्याप्ति" और "परामर्श" भी तर्कशास्त्र के संज्ञा शब्द हैं; परन्तु उनके विवरण की यहाँ आवश्यकता नहीं।

६—इस विस्तृत विश्व में इतने विषय हैं कि अल्पजीवी और अदूरदर्शी अल्पज्ञ मानव ज्ञानेन्द्रिय द्वारा कदापि उन सबका प्रत्यक्ष करने में समर्थ नहीं हो सकता। जैसे एक मनुष्य समस्त वस्तु-जात को प्रत्यक्षीभूत नहीं कर सकता वैसे ही उसे अनुमान द्वारा भी नहीं जान सकता। अतः प्रत्यक्ष और अनुमान के बहिर्भूत एक प्रकार के और ज्ञान-साधन की आवश्यकता शेष रहती है।

७—हमने कभी इँगलेंड-यात्रा नहीं की। अतः हमने लन्दन नगर भी नहीं देखा और तदन्तर्गत पारलियामेंट का प्रचण्ड भवन भी नहीं देखा। तो क्या हम स्वेज़ ही नहर, लन्दन नगर और पारलियामेंट की इमारत का कुछ भी वृत्त नहीं जान सकते? जान सकते हैं। विश्वसनीय और विद्वान् मनुष्य जो वहाँ गये हैं और जाकर उन स्थलों को अवलोकन करके पुस्तक द्वारा तत्तद्वर्णन उन्होंने प्रकाशित किये हैं, उन वर्णनों का पाठ करके, तीन सहस्र मील की दूरी पर भारतवर्ष में बैठे-बैठे हमको उन-उन विषयों का स्थूल ज्ञान होने में कोई व्यत्यय नहीं आता। ज्ञान-साधन के इस तीसरे प्रकार को "शब्द" कहते हैं।

८—जैसे दूसरों के प्रत्यक्ष किये गये विषयों का ज्ञान हमको उनकी लिखी हुई पुस्तकों के द्वारा होता है वैसे ही दूसरों के अनुमान किये गये विषयों का भी ज्ञान उसी तरह हमको होता है। यदि ऐसा न होता तो नाना प्रकार के आश्चर्यजनक शोध और घटनायें, जो हम इस समय देख रहे हैं, या जिनका ज्ञान हमको हुआ है, कदापि इस दशा को न प्राप्त होतीं, क्योंकि ऐसे अनेक विषय हैं जिनके जानने के लिए एक व्यक्ति की विद्या, बुद्धि और अध्यवसाय बस नहीं। ऐसी दशा में एक विद्वान् अनुमानादि साधनों के द्वारा जो सिद्ध करता है, वह पुस्तकस्थ करके औरों के विचार करने के लिए छोड़ जाता है। और विद्वान् उस लेख को समझकर उसके

आगे ज्ञानार्जन करने का प्रयत्न करते हैं, और तदुपार्जन के साधनों का अवलम्बन करके उस मित ज्ञान को अधिकाधिक बढ़ाते जाते हैं। न्यूटन* ने पृथ्वी की माध्याकर्षण-शक्ति का

* न्यूटन का नाम इस स्थल पर हमने इस कारण दिया है कि इस समय जिस स्कूल अथवा कालेज के विद्यार्थी से यह प्रश्न किया जाता है कि भूमि की आकर्षण-शक्ति का प्रथम ज्ञान किसने प्राप्त किया तो वह तत्काल न्यूटन का नाम लेता है, क्योंकि पाठशालाओं में प्रचलित पुस्तकें, इस विषय में, न्यूटन ही की प्रशंसा से पूरित हैं और इस शक्ति को आदि में इसी विद्वान् ने जाना, यह जगह-जगह पर उनमें लिखा है। विद्यार्थि-जनों का इसमें क्या अपराध ? जैसी उनको शिक्षा मिली वैसा ही उनमें उसका फल भी फलित हुआ। उनसे यदि हम यह कहें कि इस विषय में न्यूटन का नाम-ग्रहण करना भूल है तो वे इसे शतशः प्रमाण देने पर भी कठिनता से मानेंगे। अतएव, उदाहरणार्थ, हमको भी न्यूटन ही का आश्रय लेना पड़ा। तथापि हम यह अवश्य लिखना चाहते हैं कि हमारे भास्कराचार्य्य ने भूमि की आकर्षण-शक्ति का वर्णन न्यूटन के बहुत पहले ही कर रक्खा था। न्यूटन सन् १६४२ में उत्पन्न हुआ। भास्कराचार्य सन् ११५० ईसवी के मध्य में हुए। उन्होंने अनुमान ५०० वर्ष न्यूटन के पहिले अपने गोलाध्याय ग्रन्थ के भुवन-कोश नामक अध्याय में लिखा है—

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क पतत्वियं खे !

भावार्थ—पृथ्वी में एक प्रकार की आकर्षणशक्ति है, जिसके बल से वह आकाशस्थित जड़ पदार्थों को अपनी ओर खींच लेती है। इसी से वे पदार्थ गिरते से हैं, ऐसा बोध होता है। समतल आकाश में पृथ्वी कहाँ गिरेगी ?

शोध करके ग्रन्थ द्वारा उस शोध-ज्ञान का वितरण समग्र भूमण्डल में किया। उसी की सहायता से अन्य विद्वानों ने अनेकानेक अन्य प्राकृतिक नियमों का भेद जाना और नाना प्रकार के कलाकौशलादिक निर्माण किये; अथच तद्द्वारा और भी अनेक विज्ञान-विद्याओं की उन्नति की। न्यूटन के सिद्धान्तों का यदि वे लोग आदर न करते और यह कहकर उनको त्याज्य समझते कि जो कुछ हमने स्वयं नहीं देखा अथवा अनुमान द्वारा स्वयं प्रमाणित नहीं किया वह विश्वसनीय नहीं, तो विज्ञान-विद्या इस उन्नतावस्था को कदापि न पहुँचती।

६—तर्कशास्त्रवाले ज्ञान-साधन के कारणीभूत प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द को प्रमाण नाम से उल्लेख करते हैं, क्योंकि विषयों का अस्तित्व प्रमाणित किये जाने पर तदनन्तर इन्द्रियों को तदाकार-वृत्ति प्राप्त होती है। शब्द-प्रमाण को योरप के तत्त्ववेत्ता पृथक् प्रमाण नहीं मानते; परन्तु हम स्वदेशीय दर्शन-शास्त्र-सम्मत विषय का प्रतिपादन करते हैं। अतएव यूरोपीय दर्शन की कोटियों के खण्डन-मण्डन का विचार करना सामयिक नहीं समझते। फिर उन लोगों ने एक-एक विषय का विवेचन इतना गहन और विस्तृत किया है कि पहले उसका यथार्थतया समझना ही कठिन है। और, यदि, यथा-कथञ्चित् समझा भी तो तादृश बुद्धिवैभव और विद्वत्ता उपार्जन किये बिना उनके लेखों पर टिप्पणी करते बैठना हमें पसन्द नहीं।

१०—शब्द-प्रमाण का लक्षण हमारे यहाँ कपिल, गौतम तथा प्रायः सभी ऋषियों ने इस प्रकार लिखा है—

आप्तोपदेशः शब्दः ।

अर्थात आप्त के उपदेश को शब्द कहते हैं। अब यह प्रश्न उद्भूत होता है कि आप्त किसे कहते हैं। आप्त का भी लक्षण सबने एक ही सा लिखा है। जो प्रामाणिक और विश्वास-पात्र है तथा जो आकांक्षा, योग्यता और सन्निद्धि के नियमानुसार सार्थक सम्भाषण करता है उसे दर्शन-शास्त्र के आचार्यों ने आप्त नाम से अभिहित किया है। "चींटी ने हाथी को निगल लिया" इस प्रकार के असम्बद्ध प्रलाप जो नहीं करता, अथ च "हूँ मैं पाठ गीता करता आज" इस प्रकार के दूषित वाक्य जो नहीं बोलता, और जो समाज की सृष्टि में विश्वसनीय है उसी का वाक्य "शब्द" कहा जाता है और उसी का उपदेश अथवा सिद्धान्त माननीय हो सकता है। ऐसे ही पुरुष जो कुछ लिखते हैं अथवा कहते हैं वह प्रत्यक्ष और अनुमान से पृथक् ज्ञानोपार्जन का एक तीसरा प्रकार समझा जाता है।

११—आप्तोपदेश के विषय में हमारे यहाँ बड़ा गड़बड़ है। वेद, उपनिषत्, दर्शन और धर्म-शास्त्र में जो कुछ लिखा है सभी मान्य माना जाता है, चाहे उनमें लिखे हुए नियमों के अनुसार मनुष्य व्यवहार करे अथवा न करे, और कृतसिद्धान्तों को सत्य समझे अथवा न समझे।

इससे अनेक अनिष्ट उत्पन्न होते हैं और समाज में नाना प्रकार की कुत्सित परिपाटियों को उठा देने में अनेक आपत्तियाँ आती हैं।

१२—किस ग्रन्थकार की आज्ञा माननी और किसकी न माननी चाहिए, इसकी मीमांसा करना अति कठिन है। मोटे तौर पर देखने से प्राचीन ऋषि, जिन्होंने उपनिषत्, दर्शन और धर्म-विधायक ग्रन्थ लिखे हैं, सभी विश्वासपात्र कहे जाने के योग्य हैं। उन्होंने अपने मतलब के लिए कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। यदि कीर्ति के निमित्त ग्रन्थरचना की, ऐसा कहें, तो भी कुछ हानि नहीं। क्योंकि यशः-प्राप्ति के लिए एतादृश विषयों पर पुस्तक लिखने में असत्य का अवलम्बन करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। फिर, इन ऋषियों को "सत्यधन", "तपोधन" इत्यादि विशेषण दिये जाते थे, जिससे विदित होता है कि ये परम धर्म्मनिष्ठ और सत्यवादी थे। अतएव मनुष्य मात्र के उपकारार्थ जो कुछ इन्होंने लिखा है उसपर अविश्वास करना मूर्खता है। यह यथार्थ है, तथापि ईश्वर के अतिरिक्त अल्पबुद्धि मनुष्य कदापि सर्वज्ञ नहीं कहा जा सकता। ये ऋषि भी मनुष्य ही थे; महाज्ञानी थे; विशेष बुद्धिमान् थे; परम प्रतिभावान् थे; यह हमने माना; परन्तु ईश्वरवत् सर्वज्ञ थे, यह कहना अवश्य अत्युक्ति कही जायगी। अतएव सम्भव है कि इनके भी ग्रन्थों में यत्र कुत्र भ्रम रह गया हो।

१३—जितने विज्ञान-विषय हैं उनके भ्रम का संशोधन उन विषयों में पारदर्शी होकर नूतन शोधद्वारा विद्वज्जन कर सकते हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस समय प्रोफ़ेसर बोस ने "तड़िल्लहरी"* नामक एक विज्ञान को सिद्ध करके उसका अस्तित्व प्रमाणित किया है, यदि कालान्तर में उनका सिद्धान्त अन्य विद्वानों द्वारा अन्यथा प्रमाणित हो जायगा तो उस पर अविश्वास करने में कोई अनौचित्य न होगा। माध्याकर्षण-विषयक न्यूटन का मत सभी विद्वज्जन मान्य करते हैं, परन्तु प्रकाश-विषयक उसके मत को न मानकर फ़्रेनेल का सिद्धान्त शिरोधार्य करते हैं; क्योंकि उसने प्रमाणित करके बताया है कि न्यूटन का मत इस विषय में ठीक नहीं। इससे यह व्यक्त होता है कि विज्ञान-विषय में एक व्यक्ति का एक मत यथार्थ और अन्य मत अयथार्थ हो सकता है; परन्तु अयथार्थ मत पर अविश्वास तब तक नहीं प्रकट किया जाता जब तक कोई अन्य तत्त्ववेत्ता विद्वान् उसे भ्रमात्मक न सिद्ध कर दिखावे। पतञ्जलि मुनि ने लिखा है कि योग-साधन द्वारा ईश्वर का ज्ञान† हो सकता है। इसका खण्डन तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कोई अन्य

---

* Electric Waves.

† ततः प्रत्यक्चेतनाऽधिगमोऽप्यन्तरायाभावाश्च। योगदर्शन, प्रथम पाद, २१ सूत्र—अर्थात् तब परमेश्वर का ज्ञान होता है और नाना प्रकार के विघ्नों का नाश भी हो जाता है।

महात्मा योग-सिद्धि से यह प्रमाणित न कर दें कि ईश्वर का ज्ञान उस अवस्था को पहुँचने पर भी नहीं होता। पतञ्जलि स्वयं योगी थे और उन्होंने जो कुछ लिखा है अनुभव करके लिखा है। अतएव उनके वाक्यों को आप्तोपदेश मानना और उन पर विश्वास करना सर्वथैव उचित है।

१४—उपर्युक्त प्रतिपादन से यह सिद्ध हुआ कि दार्शनिक और वैज्ञानिक सिद्धान्तों का जब तक सप्रमाण खण्डन नहीं किया गया तब तक उन्हें न मानना और उनका आविष्करण करनेवालों को असत्यवादी अथवा भ्रमिष्ठ कहना किसी प्रकार युक्ति-युक्त नहीं।

अब हमको यहाँ पर अपने स्मृति-ग्रन्थों के विषय में कुछ कहना है, क्योंकि वे भी आप्तवाक्य की गणना के अन्तर्गत समझे जाते हैं।

१५—जितने प्रकार की विधियाँ निर्धारित होती हैं, देश, काल, जन-समाज की अवस्था और उसके कल्याण का विचार करके निर्धारित होती हैं। अपने देश में पहले सभी शस्त्र धारण कर सकते थे, परन्तु ऐसा होने से अनेक उपद्रव उद्भूत होते देख गवर्नमेंट ने उस विधि का खण्डन करके एक नूतन विधि द्वारा शस्त्र धारण का निषेध कर दिया। इसी प्रकार, पहले पति-पत्नी-समागम में पत्नी के वय का विचार न किया जाता था, परन्तु कारणवशात् अब एक नियम इस विषय का भी गवर्नमेंट को प्रचलित करना पड़ा है। हमारे मनु और

याज्ञवल्क्य ने जो संहितायें बनाई हैं उनकी रचना भी इसी प्रकार समाज के आवश्यकतानुसार की गई है। इन ग्रन्थों को बने सहस्रशः वर्ष हो गये। अतएव सर्वथैव असम्भव जान पड़ता है कि तत्कालीन अवस्था और आवश्यकतानुसार जो समस्त नियम उस समय स्थिर किये गये थे वे अब इस समय भी आवश्यक समझे जायँ। क्योंकि काल और देशपरत्व के कारण सारे नियम सदैव उपयोगी नहीं हो सकते। यदि ऐसा न होता तो गवर्नमेंट को प्रतिवर्ष नये-नये एक्ट कदापि न 'पास' करने पड़ते और पीनल कोड की धाराओं में बार-बार परिवर्तन करने का भी कदापि क्लेश न उठाना पड़ता।

मनु अथवा याज्ञवल्क्य अथवा और स्मृतिकारों ने जो नियम स्थिर किये हैं उनका सर्वतोभाव से परिपालन इस समय नहीं हो सकता, क्योंकि समाज के आचार-विचार और व्यवहार में अब आकाश-पाताल का अन्तर हो गया है। इन स्मृतियों में कहे गये नियमों का उल्लङ्घन प्रति दिन ही होता है। परन्तु बड़े-बड़े विद्वान् और माननीय गृहस्थ यह कहते सङ्कोच करते हैं कि उनमें परिवर्तन की आवश्यकता है। जहाँ तक उनकी दिनचर्या का आधार, समयानुसार बनी हुई अतएव अनेक विषयों में परस्पर-विरोधी स्मृतियों में मिलता है, तहाँ तक वे उसे सशास्त्र कहते हैं; परन्तु जब नहीं मिलता तब उनको रूढ़ि का अवलम्बन करना पड़ता है।

१५—यहाँ तक जो कुछ लिखा गया उससे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान तीन प्रकार का है—प्रत्यक्ष, अनुमान और शाब्द। विश्वसनीय और प्रामाणिक पुरुषों के कथन से जो ज्ञान होता है उसी को शाब्दज्ञान कह सकते हैं। ऐसे पुरुषों में वे सब गुण, जिनका उल्लेख हमने ऊपर किया है, होने चाहिए, और उनका कथन देश, काल और सामाजिक व्यवस्था के प्रतिकूल न होना चाहिए।

[फ़रवरी १९०१

१२—सृष्टि-विचार

परलोकवासी स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका में बड़ा नाम पैदा किया है। भक्तियोग, ज्ञानयोग, राजयोग आदि विषयों पर उनके व्याख्यान सुनकर अमेरिकावासी मुग्ध, चकित और स्तम्भित हुए हैं। स्वामीजी ही के प्रताप से अमेरिकावाले भारतवर्ष के वेदान्त की महिमा भी कुछ-कुछ जानने लगे हैं। स्वामीजी के मुख्य-मुख्य व्याख्यान छप चुके हैं और, हिन्दी* को छोड़कर, मराठी, गुजराती तथा बँगला आदि दूसरी भाषाओं में वे अनुवादित भी हो चुके हैं। स्वामीजी के कई व्याख्यान जो अभी तक अप्रकाशित पड़े थे, अब "प्रबुद्ध-भारत" नामक अँगरेज़ी मासिकपत्र में निकलने लगे हैं। इनमें से एक व्याख्यान सृष्टि-विचार के विषय में है। इस व्याख्यान का भावार्थ ही हमारे इस लेख का आधार है। स्वामीजी के व्याख्यानों में यह एक विलक्षणता है कि गूढ़ से गूढ़ बातें भी समझ में आ जाती हैं। महाकठिन विषयों को, उनका कुछ भी ज्ञान न रखनेवाले को भी, युक्ति से, समझाना स्वामीजी ही का काम था। देखिए, उन्होंने सृष्टि की रचना आदि का कैसा अच्छा विवेचन किया है।

---

* अब हिन्दी में भी उनके अनुवाद होते जा रहे हैं। १९२८

जगत् दो प्रकार का है, बाहरी और भीतरी। इन दोनों ही प्रकार के जगतों से हम सच्चे सिद्धान्तों का पता परीक्षा द्वारा पाते हैं। परीक्षायें भी दो प्रकार की हैं, बाहरी और भीतरी। बाहरी परीक्षाओं से जो सच्चे सिद्धान्त निकलते हैं उन सिद्धान्तों के समुदाय को पदार्थ-विज्ञान-विद्या कहते हैं। और, भीतरी परीक्षाओं से जो सिद्धान्त निकलते हैं उनकी गिनती मनोविज्ञान और अध्यात्म-विद्या में होती है। यदि कोई सिद्धान्त सब प्रकार सच्चा है तो उसके सच होने का प्रमाण बाहरी जगत् में भी मिलना चाहिए और भीतरी जगत् में भी। बाहरी विषयों का मेल भीतरी विषयों से मिल जाना चाहिए और भीतरी विषयों का मेल बाहरी विषयों से मिल जाना चाहिए। पदार्थ-विज्ञान के सच्चे सिद्धान्तों का प्रतिबिम्ब अन्तर्जगत्, अर्थात् भीतरी सृष्टि, किंवा भीतरी जगत् में दिखलाई देना चाहिए; और अन्तर्जगत् के सच्चे सिद्धान्तों की प्रतिमा पदार्थ-विज्ञान, अर्थात् बाहरी विश्व, में दिखाई देनी चाहिए। तिस पर भी इस समय हम देखते हैं कि बाहरी और भीतरी—दोनों प्रकार के—सिद्धान्त परस्पर नहीं मिलते। दोनों में बहुधा परस्पर विरोध पाया जाता है। जगत् के इतिहास में एक समय ऐसा था जब भीतरी सिद्धान्त सबसे अधिक श्रेष्ठ माने जाते थे; इसलिए वे बाहरी सिद्धान्तों को दबाकर सर्वश्रेष्ठ बन बैठे थे। अब ऐसा समय आया है कि बाहरी जगत् के ज्ञाता, अर्थात् पदार्थ-

विज्ञान-वादी, प्रबल हो उठे हैं। उन्होंने मनोविज्ञान और अध्यात्म-विद्या के आचार्यों के सिद्ध किये हुए अनेक सिद्धान्तों को असिद्ध ठहराने का यत्न किया है। जहाँ तक मेरी अल्प-बुद्धि काम देती है, मैं समझता हूँ कि मनोविज्ञान के जितने वास्तविक और सत्य सिद्धान्त हैं वे सब बाहरी जगत् से सम्बन्ध रखनेवाले आजकल की पदार्थ-विज्ञान-विद्या के वास्तविक और सत्य सिद्धान्तों से ब़ख़ूबी मिलते हैं।

ईश्वर ने प्रत्येक मनुष्य को यह शक्ति नहीं दी कि प्रत्येक विषय में वह अपना सानी न रक्खे। प्रत्येक विषय में वह अद्वितीय नहीं हो सकता। और न ईश्वर ने प्रत्येक जाति ही को इतनी शक्ति और योग्यता दी है कि वह अकेली ही सब प्रकार की विद्या और सब प्रकार के विज्ञान में प्रधानता प्राप्त कर सके। योरपवाले, इस समय, बाहरी जगत् से सम्बन्ध रखनेवाले विज्ञान में विशेष पारदर्शी हैं। परन्तु उनके पूर्वज अन्तर्जगत्, अर्थात् आत्मा और मन, से सम्बन्ध रखनेवाली अध्यात्म-विद्या में बहुत ही पीछे थे। पूर्वी देशों में रहनेवालों की दशा इससे उलटी थी। वे बाह्य जगत्, अर्थात् पदार्थ-विज्ञान, में विशेष कुशल न थे। परन्तु अन्तर्जगत्, अर्थात् आत्मा और मन, से सम्बन्ध रखनेवाली विद्या में, विशेष कुशल, व्युत्पन्न और विज्ञ थे। इसी लिए पूर्वी देशों का पदार्थ-विज्ञान-शास्त्र पश्चिमी देशों के पदार्थ-विज्ञान-शास्त्र से नहीं मिलता। और, इसी लिए, पश्चिमी देशों की अध्यात्म-विद्या पूर्वी देशों की

अध्यात्म-विद्या से नहीं मिलती। परन्तु दोनों देशों के विज्ञानियों के सिद्धान्त ठीक हैं। ठीक इसलिए हैं कि सत्य ही का अवलम्बन करके वे स्थिर किये गये हैं। इसलिए जैसा हम ऊपर कह आये हैं, सच्चे और वास्तविक सिद्धान्त, चाहे वे जिस विद्या से सम्बन्ध रखते हों, परस्पर-विरोधी न होने चाहिए। उन सबका मेल मिल जाना चाहिए। अन्तर्जगत् के सिद्धान्त बाह्य जगत् के सिद्धान्तों के प्रतिकूल न होने चाहिए। और बाह्य जगत् के सिद्धान्त अन्तर्जगत् के प्रतिकूल न होने चाहिए।

आजकल के पदार्थ-विज्ञान-वादी और ज्योतिषियों ने सृष्टि के सम्बन्ध में जो कल्पनायें, जो मत, जो सिद्धान्त स्थिर किये हैं उनको हम लोग जानते हैं। हम यह भी जानते हैं कि वे मत और वे सिद्धान्त योरप के वेदान्तियों के दिल को कितना दुखाते हैं। विज्ञान-सम्बन्धी छोटे से छोटे आविष्कार भी, बम के गोले के समान, उनके घर पर कैसा गिरते हैं; और वे इन वैज्ञानिक परीक्षाओं और आविष्कारों को तुच्छ करने का कैसा यत्न किया करते हैं। हम, आज, यहाँ पर, भरतखण्ड के आचार्यों की मनोविज्ञान-विद्या के अनुसार यह दिखलाना चाहते हैं कि सृष्टि के सम्बन्ध में उनके विचार कैसे थे। उनको सुनकर आपको बड़ा आश्चर्य होगा। आप देखेंगे कि आजकल के नवीन से नवीन आविष्कारों के साथ उनका मेल कितनी विलक्षणता से मिलता है। जहाँ कहीं

किसी बात की कमी पाई जायगी वहाँ आप देखेंगे कि वह कमी आजकल के विज्ञान में है; आजकल के सिद्धान्तों में है; भारतवर्ष के प्राचीन सिद्धान्तों में नहीं।

हम लोग 'नेचर' शब्द को काम में लाते हैं। 'नेचर' का अर्थ आदि-शक्ति अथवा आदि-माया है। संस्कृत-शास्त्रों के प्राचीन विद्वानों ने इस 'नेचर' शब्द के भावार्थसूचक दो नाम रक्खे हैं। एक प्रकृति जो 'नेचर' शब्द का अनेक अंश में समानार्थक है; दूसरा अव्यक्त। जिसका भेद न हो सके, जो प्रत्यक्ष न देखा जा सके, उसे अव्यक्त कहते हैं। अव्यक्त से ही सब कुछ व्यक्त होता है—निकलता है। तत्त्व, परमाणु, पदार्थ, शक्ति, मन, मनोव्यापार और बुद्धि इत्यादि की उत्पत्ति उसी से होती है। भारतवर्ष में अध्यात्म-विद्या के जाननेवाले तत्त्वज्ञानी मुनियों ने, हज़ारों वर्ष हुए, यह कह दिया था कि मन भी एक भौतिक पदार्थ है। इस बात को सुनकर पश्चिमी विद्वान् चौंक पड़ते हैं। इस समय के पश्चिमी देहात्मवादी, अर्थात् देह ही को सब कुछ समझनेवाले, इस बात को सिद्ध करने का यत्न कर रहे हैं कि जैसे देह प्रकृति से उत्पन्न हुई है वैसे ही मन भी प्रकृति से उत्पन्न हुआ है। मनोव्यापार अर्थात् विचार, भी प्रकृति ही से सम्बन्ध रखते हैं। क्रम-क्रम से हमको इसका भी ज्ञान हो जायगा कि बुद्धि भी प्रकृति ही से उत्पत्ति पाती है। प्राचीन योगियों ने प्रकृति अथवा अव्यक्त को तीन प्रकार की शक्तियों

का समान-स्थल माना है। इन शक्तियों का नाम सत्व, रज और तम है। तम सबसे अधम शक्ति है; उससे सांसारिक वस्तुओं की ओर मन का आकर्षण होता है। तम से रज का स्थान कुछ ऊँचा है; उसके योग से मन सांसारिक वस्तुओं से हट जाता है। सत्व सबसे ऊँचा है; वह तम और रज दोनों को अपने वश में रखता है। अर्थात् मन को वह न तो संसार की ओर झुकाता ही है और न उससे हटाता ही है। इसलिए, खिंच जाना और हट आना, ये जो दो शक्तियाँ हैं वे जब सत्व के बल से स्तम्भित हो जाती हैं तब जगत् में सब चल-विचल बन्द हो जाता है; सृष्टि के क्रम में विच्छेद हो जाता है; कुछ भी उत्पन्न नहीं होता। जब तक सत्व का असर रज और तम पर बराबर रहता है तब तक सृष्टि नहीं होती; ज्योंही उसके बल में अन्तर आया त्योंही रज और तम में से एक दूसरे से अधिक सशक्त हो उठा; चाञ्चल्य आरम्भ हुआ; और सृष्टि का क्रम फिर पहले का सा हो गया। कालचक्र के अनुसार यह दशा समय-समय पर हुआ करती है। अर्थात् सत्व की तुल्य-बलता में कभी-कभी बाधा आ जाती है। तुल्य-बलता में विघ्न पड़ते ही ये सब शक्तियाँ फिर एक दूसरे से मिल जाती हैं और उनके मेल से उत्पत्ति पाकर यह जगत्, किंवा जगत् के पदार्थों का समुदाय, फिर प्रकट हो जाता है। इसके साथ ही यह भी है कि जितने पदार्थ हैं उन सबका झुकाव सत्व की तुल्य-बलता की ओर रहता है।

क्योंकि उनकी स्वाभाविक अवस्था वही है। इसलिए एक न एक दिन वे फिर उस दशा को पहुँच जाते हैं और उनके वहाँ पहुँचते ही प्रलय हो जाती है; सारी सृष्टि ध्वंस हो जाती है। कुछ काल के अनन्तर फिर स्वाभाविक स्थिति में विघ्न पड़ता है; उत्पन्न होकर, फिर, सृष्टि धीरे-धीरे तरङ्गवत् बाहर निकल आती है। जितनी हलचल है, जितने पदार्थ जगत् में हैं, सब तरङ्गों के रूप में हैं। उनकी उन्नति और अवनति हुआ ही करती है।

किसी-किसी तत्त्ववेत्ता का यह मत है कि कुछ काल के लिए सारी सृष्टि ध्वंस हो जाती है। परन्तु कोई-कोई कहते हैं कि सारी सृष्टि एक साथ ही ध्वंस नहीं होती; किन्तु एक-एक लोक एक-एक बार ध्वंस होते हैं। अर्थात् जिस समय हमारे इस सूर्य से सम्बन्ध रखनेवाला लोक विध्वंस होकर अपनी पहले की अव्यक्त स्थिति को पहुँच जायगा, उस समय, इसके समान और करोड़ों लोक अव्यक्त स्थिति से बाहर निकले रहेंगे। अर्थात् उनका पूरा विकास रहेगा। उनकी सृष्टि में ज़रा भी बाधा न आवेगी। यह दूसरा ही मत हमें पसन्द है। हम भी यही समझते हैं कि यह ध्वंस सारी सृष्टि का एक ही साथ नहीं होता। भिन्न-भिन्न लोकों की भिन्न-भिन्न अवस्था रहती है। परन्तु सृष्टि का नियम एक ही है। प्रकृति का समय-समय पर विकास और लय हुआ ही करता है। जब प्रकृति अपनी पूर्वावस्था को पहुँच जाती है,

अर्थात् जिस समय सत्व का तुल्य-बलत्व रहता है, उस अवस्था का नाम प्रलय है। भारतवर्ष के ईश्वरवादी महात्माओं ने प्रकृति के इस विकास और लय को, यथाक्रम, ईश्वर का श्वास और उच्छ्वास माना है। अर्थात् अपने श्वास के साथ ईश्वर इस सृष्टि को बाहर प्रकट कर देता है; और उच्छ्वास के साथ उसे फिर अपनी कुक्षि में लीन कर लेता है। ध्वंस अथवा लीन होने पर इस सृष्टि का क्या होता है? वह परमाणु रूप में वहीं रहती है। वह अपने कारण में लीन हो जाती है। कारण और काल का बन्धन उसे लगा ही रहता है। उनसे उसे छुटकारा नहीं मिलता। मान लीजिए कि यह सारी सृष्टि—जितने लोक हैं सब साथ ही—लय होने के लिए सिकुड़ने लगे, और सिकुड़कर यहाँ तक छोटे हो गये कि हम लोग एक कण अथवा परमाणु के समान हो गये, तो हमको इस परिवर्त्तन का—इस लय का—कुछ भी ज्ञान न होगा, क्योंकि हमसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने पदार्थ हैं वे सब एक ही साथ सिकुड़कर छोटे हो जायँगे। जो कुछ है वह सब, इसी प्रकार, लय को प्राप्त हो जाता है; और यथा-समय फिर उत्पन्न होता है। कारण का नाश नहीं होता। कारण से फिर कार्य की उत्पत्ति होती है; और यह उत्पत्ति और लय सदा इसी भाँति हुआ करता है।

सृष्टि का सबसे अधिक आश्चर्यकारक अंश वह है जिसे हम लोग, इस समय, स्थूल पदार्थ कहते हैं। अध्यात्म-विद्या

के जाननेवाले प्राचीन पण्डित स्थूल पदार्थों को भूत कहते थे। भूत का भावार्थ है बाहरी तत्त्व। उनके मत में एक तत्त्व नित्य है; उसका नाश नहीं होता। दूसरे तत्त्व इसी एक से निकलते हैं। इस तत्त्व का नाम आकाश है। आजकल के विद्वान् जिसे ईथर कहते हैं; उसके और आकाश के अर्थ में बहुत कुछ समता है; परन्तु दोनों का अर्थ बिलकुल ही एक नहीं है। इस आकाश-तत्त्व के साथ कुछ और भी रहता है। उसे प्राण कहते हैं। प्राण के विषय में हम आगे विस्तारपूर्वक कहेंगे। यह आकाश और यह प्राण नित्य हैं। उनका नाश नहीं होता। वे मिलते हैं; फिर मिलते हैं और फिर मिलते हैं; और सब तत्त्व — सब भूत—उन्हीं से बनते हैं। कल्प के अन्त में सारे तत्त्व घटकर परमाणु-मय हो जाते हैं और इसी आकाश और इसी प्राण में, अर्थात् जहाँ से आये थे, लौट जाते हैं। ऋग्वेद सबसे पुराना ग्रन्थ है। उससे अधिक पुराना ग्रन्थ संसार में नहीं। उसमें एक जगह सृष्टि का बहुत ही अच्छा वर्णन है। यह वर्णन कविता के समान हृदयग्राही और सुन्दर है। वहाँ लिखा है—"जिस समय किसी पदार्थ का अस्तित्व अथवा अनस्तित्व न था; जिस समय अन्धकार, अन्धकार ही के ऊपर लहरें ले रहा था; उस समय क्या था"? इस प्रश्न का वहीं उत्तर भी है कि—"वह, उस समय, निश्चल था"। यह प्राण उस समय था; परन्तु, उसमें किसी प्रकार की चल-विचल न थी। उसका आन्दोलन बन्द हो गया था। उसमें

तरङ्गों का उठना बन्द हो गया था। अनन्त समय बीत जाने पर जब कल्प का आरम्भ होता है तब उसमें आन्दोलन उत्पन्न होता है; उसमें कम्प होता है। कम्प अथवा आन्दोलन उत्पन्न होने पर लहरें उठने लगती हैं और उनके द्वारा प्राण आकाश को, एक के पीछे एक, अनगिनत धक्के देता है। इन धक्कों से सूक्ष्म परमाणु घने हो जाते हैं; और जैसे-जैसे उनमें घनता आती जाती है वैसे ही वैसे भिन्न-भिन्न तत्त्वों की उत्पत्ति होती जाती है। हम लोग इन बातों का भाषांतर प्रायः बड़ी ही विलक्षणता से किया हुआ, कहीं-कहीं, देखते हैं। भाषान्तर करनेवाले न तो तत्त्ववेत्ताओं ही की सहायता की परवा करें और न भाष्यकारों ही के किये अर्थ की तरफ़ देखें। और वे स्वयं इतनी बुद्धि नहीं रखते कि इन बातों को अच्छी तरह समझ सकें। मूढ़ और मन्द-मति लोग संस्कृत के दो-चार शब्द सीखते हैं और ग्रन्थों का अनुवाद करने लगते हैं। वे तत्त्वों का अनुवाद अग्नि, जल, वायु आदि करते चले जाते हैं। यदि वे भाष्यकारों की टीकायें पढ़ें और उनके समझने का यत्न करें तो उन्हें मालूम हो जाय कि वहाँ अग्नि और वायु आदि से अभिप्राय नहीं है। प्राण जब बल-पूर्वक धक्के देने लगता है तब आकाश से तरङ्गें उठने लगती हैं। ये तरङ्गें ही वायु हैं। इसी प्रकार वायु में भी आन्दोलन होने लगता है और क्रम-क्रम से वेग बढ़ते जाने के कारण परमाणु एक दूसरे से रगड़ खाते हैं। इस घर्षण से आग उत्पन्न हो

जाती है। आग से परमाणु पिघल उठते हैं और उन द्रवीभूत परमाणुओं से पानी की उत्पत्ति होती है। पानी जमकर सान्द्रता-घनता पैदा करता है। इसी घनता से नाना प्रकार के द्रव्य-पदार्थ उत्पन्न होते हैं। आकाश में आन्दोलन होने से वायु की सृष्टि हुई। वायु से अग्नि हुई। अग्नि से जल हुआ। जल से द्रव्य हुए। यह उत्पत्ति का क्रम है। जिस प्रकार यह सृष्टि उत्पन्न होती है, ठीक उसी प्रकार वह नष्ट भी हो जाती है। जितने द्रव्य हैं सब, किसी समय, पिघलकर आग हो जायँगे। आग में आन्दोलन अर्थात् तरङ्ग उत्पन्न होंगे। ये तरङ्ग जब बन्द हो जायँगे तब इस कल्प का लय हो जायगा। यथासमय यह, फिर, उत्पन्न होगा और फिर आकाश में लीन हो जायगा। इसी प्रकार उत्पत्ति और लय होता रहता है। आजकल ज्योतिषी कह रहे हैं कि इस सूर्य और इस पृथ्वी की अवस्था में ऐसा ही अन्तर हो रहा है। यह हमारी सान्द्र और सघन पृथ्वी, किसी दिन गलकर द्रव हो जायगी और द्रव होकर, यथा-क्रम, अपने पूर्वस्थान आकाश में पहुँच जायगी। आकाश की सहायता के बिना प्राण कुछ नहीं कर सकते। प्राणों का काम केवल आन्दोलन उत्पन्न करना है। वे केवल चल-विचल उत्पन्न करनेवाले हैं। जितनी शक्तियाँ हैं, जितने विचार हैं, जितनी चञ्चलता है, सब प्राणों की करतूत है। और जितने शरीरवान् पदार्थ हैं, जितने जड़ द्रव्य हैं, सब आकाश के रूपान्तर हैं। प्राण

अकेले नहीं रह सकते; और एक मध्यस्थ के बिना कुछ कर भी नहीं सकते हैं। प्राण, अपनी प्रत्येक अवस्था में, जब वे विशुद्ध प्राण हैं और किसी से कुछ सरोकार नहीं रखते तब, स्वयं आकाश ही के भीतर रहते हैं। जब वे गुरुत्वाकर्षण और केन्द्र-त्यागिनी आदि प्राकृतिक शक्तियों के रूप में देखे जाते हैं तब उनके साथ स्थूल द्रव्य अर्थात् शरीरवान् पदार्थ अवश्य रहते हैं। आपने शक्ति को साकार वस्तु के बिना कभी न पाया होगा, और न साकार वस्तु ही को शक्ति के बिना पाया होगा। इन दोनों का अन्योन्याश्रय है। जिन्हें हम शक्ति और साकार वस्तु कहते हैं वे इन्हीं सूक्ष्म प्राण और आकाश के इन्द्रिय-गोचर रूपान्तर हैं। प्राणों को आप अँगरेज़ी में जीवन कह सकते हैं—सजीव शक्ति कह सकते हैं। परन्तु मनुष्य ही के जीवन तक आप उनकी सीमा निश्चित न कर दीजिए; और अँगरेज़ी शब्द 'स्पिरिट' अर्थात् आत्मा से भी आप उन्हें अलग रखिए। आत्मा और प्राणों में अन्तर है।

सृष्टि आदि और अन्तहीन है। वह होती है और यथा-समय आकाश में लीन हो जाया करती है। न उसका आदि है न उसका अन्त। वह सतत है।

इस विषय में एक बात बड़े मज़े की याद आई। योरप के कोई-कोई तत्त्ववेत्ता कहते हैं कि हम लोगों के होने ही से यह जगत् है। अर्थात् जगत् का अस्तित्व हमारे अस्तित्व के ऊपर अवलम्बित है। यदि हम न हों तो यह जगत् भी न

रहे! यही बात बहुधा एक और ही प्रकार से कही जाती है। ये तत्त्ववेत्ता कहते हैं कि यदि जगत् में रहनेवाले सब मनुष्य मर जायँ; सज्ञान और इन्द्रियविशिष्ट मनुष्य और दूसरे जीव न रहें, तो सृष्टि का भी क्षय हो जाय! ऐसा कहना सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है। उसे असत्य सिद्ध करना बहुत ही सरल बात है। परीक्षाओं और प्रमाणों से इस मत की असारता सिद्ध कर दी गई है। योरप के तत्त्ववेत्ता सृष्टि के लय और सृष्टि की उत्पत्ति के नियमों को तो जानते हैं; परन्तु तत्त्व-विद्या को ठीक-ठीक नहीं जानते; उसके सूक्ष्म सिद्धान्तों को नहीं जानते। उसकी थोड़ी सी झलक भर उनको मिल गई है।

भारतवर्ष के पुराने तत्त्वदर्शी विद्वानों के विषय में हम पहले एक और ही बात का विचार करना चाहते हैं। ये महात्मा कहते हैं कि जितने स्थूल पदार्थ हैं सब सूक्ष्म परमाणुओं से बने हैं। स्थूल रूप में जो कुछ साकार है, शरीरी है, देह विशिष्ट है, सब परमाणुओं के मेल से उत्पन्न हुआ है। इन परमाणुओं का नाम है तन्मात्रा। हम एक फूल सूँघ रहे हैं। हमारी नाक से वह कुछ दूर पर है। उसकी सुगन्धि का ज्ञान होने के लिए हमारी नाक से किसी पदार्थ का स्पर्श अवश्य होना चाहिए। फूल जहाँ था वहीं है। वह हमारी तरफ़ चलकर आता हुआ नहीं दिखाई देता। इसलिए बिना किसी वस्तु का नाक से स्पर्श हुए फूल की सुगन्धि का ज्ञान हमको नहीं हो सकता। और सुगन्ध तो आ रही है। अत-

एव नाक को कुछ अवश्य स्पर्श करता है। जो वस्तु फूल से आती है और नाक को स्पर्श करती है वही तन्मात्रा है। वही फूल के सूक्ष्म परमाणु हैं। ये परमाणु इतने सूक्ष्म हैं कि यदि लाखों वर्ष तक ये निकलते रहें तो भी फूल का अत्यल्प अंश भी कम न हो। प्रकाश के लिए भी यही कहा जा सकता है; उष्णता के लिए भी यही कहा जा सकता है; और संसार की सभी वस्तुओं के लिए यही कहा जा सकता है। इन तन्मात्राओं के भी विभाग किये जा सकते हैं। और उन विभागों के भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाग किये जा सकते हैं। भिन्न-भिन्न आचार्यों के भिन्न-भिन्न मत हैं। तात्पर्य सबका एक ही है। इसलिए इस विषय में हम और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं समझते। हमारे लिए इतना ही जानना काफ़ी है कि जितने स्थूल पदार्थ हैं सब बहुत ही छोटी-छोटी वस्तुओं के योग से बने हैं। पहले स्थूल पदार्थ हैं; उनको हम भी स्पर्श कर सकते हैं। फिर सूक्ष्म पदार्थ हैं; वे हमारी इन्द्रियों को स्पर्श करते हैं; नाक, कान, आँख आदि का उनसे संयोग होता है। आकाश-व्यापी "ईथर" की लहरें हमारी आँखों को स्पर्श करती हैं। वे हमको देख नहीं पड़तीं। परन्तु हम यह जानते हैं कि आँखों को उनका स्पर्श होना ही चाहिए। बिना उनके स्पर्श के हम प्रकाश अथवा और किसी वस्तु को देख ही नहीं सकते। क्योंकि, प्रकाश की उत्पत्ति "ईथर" की लहरों ही से है। इन

तन्मात्राओं का क्या कारण है? अध्यात्म-विद्या के जाननेवाले हमारे प्राचीन आचार्य इसका बड़ा ही अद्भुत और अचम्भे में डालनेवाला उत्तर देते हैं। वे इन तन्मात्राओं का कारण आत्म-ज्ञान अथवा अन्तर्बोध बतलाते हैं। वही इन सूक्ष्म परमाणुओं का कारण है; वही हमारी इन्द्रियों का भी कारण है।

अच्छा, ये इन्द्रियाँ क्या वस्तु हैं? देखिए, ये हमारी आँखें हैं; परन्तु देखने का काम आँखों का नहीं है। मस्तिष्क में जो ज्ञानागार है उसे निकाल डालिए; आँखें जहाँ की तहाँ बनी रहेंगी; आँखों के परदे सब यथास्थित रहेंगे; पदार्थों का चित्र भी उन पर खिँचता रहेगा; परन्तु, तिस पर भी, आँखों को कुछ न देख पड़ेगा। इसलिए देखने की इन्द्रिय नेत्र नहीं; नेत्रों का होना गौण है; नेत्र, देखने में सहायता ही भर देते हैं। देखने की इन्द्रिय ज्ञानतन्तु हैं। ज्ञान-तन्तुओं का अधिष्ठान मस्तिष्क में है। आँखों के समान नाक भी एक यन्त्र है। सुगन्ध प्राप्त कराने में वह सहायता भर देती है; पर सुगन्धि-ज्ञान की असल इन्द्रिय भी ज्ञान-तन्तु हैं। नाक, कान, आदि अवयव बाहर से देखने भर के लिए हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के ज्ञानों का अनुभव करानेवाले तन्तु जुदे ही हैं। वही ज्ञानवाहक तन्तु सच्ची इन्द्रियाँ हैं।

आँख के लिए एक, कान के लिए दूसरी, नाक के लिए तीसरी—ऐसे ही और भी—इन्द्रिय होने की क्या आवश्यकता है? एक ही से सबका काम क्यों नहीं चलता? क्योंकि,

ऐसा होना सम्भव ही नहीं। यदि एक ही से सबका काम निकल जाता तो, जब मन का योग एक वस्तु से होता तब, सारी इन्द्रियाँ अपना-अपना काम करती रहतीं; अर्थात् सब इन्द्रियों को एक वस्तु का साथ ही ज्ञान होता। इसे हम ज़रा अधिक स्पष्ट करके कहते हैं। देखिए, हम आपसे बातचीत कर रहे हैं और आप सुन रहे हैं। इस समय आपको यह ख़बर नहीं कि यहाँ पर और क्या हो रहा है। क्योंकि आपके मन ने सुनने की इन्द्रिय के साथ संयोग कर लिया है और देखने की इन्द्रिय से सम्बन्ध तोड़ दिया है। यदि एक ही इन्द्रिय होती तो मन साथ ही सुनता भी और देखता भी। वह साथ ही सुनता भी, देखता भी और सूँघता भी। ये सब बातें साथ ही न करना उसके लिए असम्भव हो जाता। यही कारण है जो प्रत्येक इन्द्रिय के लिए पृथक् पृथक् अवयव बनाये गये हैं। प्राणियों की गुण-धर्म-सम्बन्धिनी अर्वाचीन विद्या से यह बात सिद्ध है। इस बात को हम ज़रूर मानते हैं कि हम साथ ही सुन भी सकते हैं और देख भी सकते हैं। परन्तु इसका कारण यह है कि जब ऐसा होता है, तब मन का कुछ संयोग देखने की इन्द्रिय से रहता है और कुछ सुनने की इन्द्रिय से। उसका योग बँट जाता है। इसलिए ऐसा होता है।

ये इन्द्रियाँ हैं क्या पदार्थ? आँख, कान, नाक आदि अवयव स्थूल (साकार—भौतिक) पदार्थों से बने हैं। उनकी

इन्द्रियाँ भी भौतिक अर्थात् स्थूल पदार्थों से बनी हैं। ज्ञान-तन्तुओं के रूप में मस्तिष्क उनकी निवास-भूमि है। भिन्न-भिन्न प्रकार की भौतिक शक्तियों में प्राणों को परिणत करने के लिए जैसे यह शरीर भौतिक पदार्थों से बना है, वैसे ही ज्ञानात्मक सूक्ष्म शक्तियों में प्राणों को परिणत करने के लिए ये इन्द्रियाँ भी आकाश, वायु, तेज आदि तत्त्वों से बनी हैं। मन को मिलाकर इन सब इन्द्रियों का नाम है लिङ्ग-शरीर अथवा सूक्ष्म-शरीर। लिङ्ग-शरीर आकारवान् है; क्योंकि जो कुछ भौतिक पदार्थों से बनता है उसका आकार अवश्य होता है।

इन्द्रियों के आगे, अर्थात् उनके अनन्तर, मन है। चित्त की आन्दोलिनी, किंवा अनस्थिर, किंवा तरङ्गवती वृत्ति का नाम मन है। मन, चित्त की चञ्चला वृत्ति है। यदि आप तालाब में पत्थर फेकेंगे, तो फेकने के साथ ही पानी में पहले आन्दोलन उत्पन्न होगा और फिर प्रतिबन्ध। ज़रा देर पानी कम्पित होगा और कम्पित होकर पत्थर की प्रतिबन्धकता करने लगेगा; पत्थर को रोकने लगेगा। चित्त पर जब किसी वस्तु का चिह्न होने लगता है अर्थात् उस पर उसका ठप्पा उठने लगता है, तब उसमें स्पन्दन होता है, अर्थात् वह कुछ कँप सा उठता है—वह कुछ तरङ्गित सा हो जाता है। इसी तरङ्गित, इसी कम्पित, इसी स्पन्दित, इसी आन्दोलित अवस्था को मन कहते हैं। भाँति भाँति के ज्ञानों की प्रतिमाओं को मन, और भीतर ले जाकर, बुद्धि को देता है। बुद्धि के आगे

अहङ्कार है। अहङ्कार का अर्थ है आत्म-सज्ञानता किंवा आत्म-वृत्ति। 'अहं', 'मैं', 'हम' शब्द उसी के सूचक हैं। अहङ्कार के आगे महत् है। महत् अर्थात् सूक्ष्म बुद्धि (विज्ञता—सदसद्विचार-शक्ति) प्रकृति के अस्तित्व का सबसे अधिक श्रेष्ठ रूप है। इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहङ्कार और महत, इनमें से प्रत्येक, अपने से पहलेवाले का परिणाम है। तालाब के उदाहरण में जितने आघात होते हैं सब बाहर से आते हैं। परन्तु मनोरूपी तालाब में बाहर से भी धक्के लग सकते हैं और भीतर से भी। महत् के आगे पुरुष अर्थात् आत्मा है। वह विशुद्ध है। वह सब प्रकार पूर्ण है। वही द्रष्टा है; वह अकेला ही सब कुछ देखता है। उसी के लिए ये सब इतने झंझट हैं।

आत्मवान् मनुष्य खड़े-खड़े संसार के सब व्यापार देखता है। स्वभाव से वह मलिन नहीं है। स्वभाव से वह अविशुद्ध नहीं है। उस पर मलिनता का केवल आरोप है। अध्यास, आभास अथवा प्रतिबिम्ब को देखकर उस पर अविशुद्धता का आरोप किया जाता है। स्फटिक के पास जवा-पुष्प रखने से जैसे स्फटिक का भी रङ्ग लाल दिखाई देने लगता है, वैसे ही मलिन वस्तुओं के आभास से आत्मा भी मलिनता-युक्त भासित होता है। वास्तव में न स्फटिक ही लाल है और न आत्मा ही मलिन है। मान लीजिए कि आत्मायें अनन्त हैं; और प्रत्येक आत्मा पूर्ण और विशुद्ध है। परन्तु नाना प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म भौतिक पदार्थ अपने-अपने आभास

से, अपने-अपने प्रतिबिम्ब से, उसे रङ्ग-बिरङ्गा बना रहे हैं। यह क्यों ऐसा होता है? प्रकृति क्यों ऐसे खेल खेलती है? आत्मा की उन्नति ही के लिए प्रकृति यह सब करती है। यह सारी सृष्टि आत्मा की भलाई ही के लिए है। यह इसलिए है कि आत्मा इन सब झगड़ों से मुक्त हो जाय; जिसमें फिर कभी उस पर कोई रङ्ग न चढ़े। यह संसार एक प्रचण्ड पुस्तक है। वह मनुष्य के सामने खोलकर इसलिए रक्खी गई है जिसमें मनुष्य उसे पढ़े और अपनी माया-जनित मूर्खता से छुटकारा पाकर, अन्त में, सर्वज्ञ और सर्व-शक्तिमान् होकर, संसार-रूपी पुस्तक को बन्द करके, उससे वह अलग हो जाय।

हम यहाँ पर आपसे एक बात कहना चाहते हैं। वह यह कि अध्यात्म-विद्या के जाननेवाले हमारे कोई-कोई प्रसिद्ध आचार्य्य ईश्वर के अस्तित्व को उस प्रकार नहीं मानते जिस प्रकार आप मानते हैं। भारतवर्ष की अध्यात्म-विद्या के जानने-वाले महात्माओं में कपिल पिता के तुल्य हैं। वे ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते। उनके मत में पौरुषेय अर्थात् व्यक्तिभूत ईश्वर की बिलकुल आवश्यकता नहीं; अकेली प्रकृति ही सब कुछ कर सकती है।

परन्तु वे एक विशेष प्रकार का ईश्वर मानते हैं। वे कहते हैं कि हम सब लोग मुक्त होने के लिए हज़ारों यत्न करते हैं। यदि हम मुक्त हो जायँ तो, एक निश्चित काल तक के लिए, हम प्रकृति में लीन हो सकते हैं। लीन रहने का समय बीत

जाने पर हम फिर प्रकृति से बाहर निकल आ सकते हैं, और उसके स्वामी हो सकते हैं। उस पर अपनी सत्ता चला सकते हैं। फिर वह हमारा कुछ नहीं कर सकती। इस अवस्था को प्राप्त होने पर हम सर्वज्ञ और सर्व-शक्तिमान् हो सकते हैं; और सर्वज्ञता तथा शक्तिमत्ता के अर्थ में ईश्वर कहलाये जा सकते हैं। हम भी, आप भी और एक महातुच्छ मनुष्य भी, इस प्रकार, जुदे-जुदे कल्पों में, ईश्वर हो सकते हैं। कपिलजी कहते हैं कि ऐसा ईश्वर कुछ काल के लिए हो सकता है, अनन्त काल के लिए नहीं। सर्वज्ञ और सर्व-शक्तिमान् अविनाशी ईश्वर सदा के लिए नहीं हो सकता। ईश्वर यदि अविनाशी और नित्य माना जाय तो इस मानने में एक बड़ी भारी कठिनाई आ पड़ती है। वह यह कि ऐसा ईश्वर या तो बद्ध होगा, या मुक्त। जो ईश्वर सब प्रकार के प्राकृतिक बन्धनों से मुक्त है वह सृष्टि की रचना के झंझट में कभी न पड़ेगा; क्योंकि उसके लिए सृष्टि-रचना की कोई आवश्यकता नहीं। और यदि वह सांसारिक बन्धनों से बद्ध है तो वह सृष्टि की रचना कर ही न सकेगा; वह स्वयं अशक्त होगा। इसलिए ऐसे सर्वज्ञ और ऐसे सर्व-शक्तिमान् ईश्वर का होना असम्भव है जो नित्य अर्थात् अविनाशी हो। अतएव, आचार्य कपिल का मत है कि हमारे दार्शनिक और धार्म्मिक ग्रन्थों में जहाँ ईश्वर शब्द आया है वहाँ उन मानुषिक जीवात्माओं से मतलब है जो मुक्त हो गये हैं। जितने मनुष्य-जातीय प्राणी हैं

सबका लय होकर, किसी समय, एक महान् मानवी प्राणी हो सकता है।

सांख्य के आचार्य कपिल सब आत्माओं की एकरूपता पर विश्वास नहीं करते। उनकी विवेचना अपूर्व है। भरत-खण्ड के दार्शनिक महात्माओं में वे पिता के तुल्य माने जाते हैं। बौद्ध दर्शन, तथा अन्य दर्शन भी उन्हीं के विचारों का परिणाम हैं।

सांख्य के अनुसार सब आत्मायें मुक्त हो सकती हैं और मुक्त होकर अपनी सर्वज्ञता और सर्व-शक्ति-सत्ता को प्राप्त कर सकती हैं। इस बात का विचार करने से यह प्रश्न उठता है कि आत्माओं को यह बन्धन कब और कहाँ से मिला? सांख्यकार कहते हैं कि यह बन्धन अनादि है। यदि इसका आदि नहीं है तो अन्त भी न होना चाहिए। और यदि यह बन्धन अनादि और अनन्त है तो उससे छुटकारा भी कभी नहीं हो सकता। वे कहते हैं कि यह अनादि सम्बन्ध सतत नहीं है; बराबर लगातार नहीं है। प्रकृति अवश्य अनादि और अनन्त है; परन्तु आत्मा को उसी प्रकार अनादि अनन्त नहीं कह सकते। प्रकृति में एकत्र नहीं है; व्यक्तित्व नहीं है; अविभक्तता नहीं है। उसमें अनेकता का भाव विद्यमान है। प्रकृति की उपमा नदी से दी जा सकती है। नदी में सदैव नया पानी आया करता है। और जितना पानी आता है उसके समूह का नाम नदी है। उसके पानी का परिवर्तन हुआ करता

है; वही पानी उसमें हमेशा नहीं रहता। प्रकृति का भी यही हाल है। प्रकृति में जो कुछ है उसमें हेर-फेर हुआ ही करता है; परन्तु आत्मा में कोई हेर-फेर नहीं होता। इसलिए परिवर्तनशील प्रकृति के बन्धन से अपरिवर्तनशील अर्थात् सदा एकरस रहनेवाला आत्मा छूट सकता है।

इस विषय में सांख्यकार का एक सिद्धान्त बड़ा ही अनोखा है। वे कहते हैं कि यह अनन्त सृष्टि उसी नियम, उसी कल्पना, उसी अनुसन्धान के अनुसार रची गई है जिसके अनुसार मनुष्य अथवा एक छोटे से छोटे प्राणी की रचना होती है। जिस प्रकार मनुष्यों में मन है, उसी प्रकार सृष्टि में भी मन है। जब यह सृष्टि उत्पन्न होती है तब वही पदार्थ इसमें अवश्य होने चाहिए। वही पदार्थ अर्थात् पहले महत्, फिर अहङ्कार, फिर इन्द्रिय, फिर सूक्ष्म पदार्थ, फिर स्थूल पदार्थ, फिर जगत्। सांख्य के अनुसार इस समग्र सृष्टि का एक शरीर है, एक पिण्ड है। उसमें हम पहले स्थूल पदार्थ देखते हैं, फिर सूक्ष्म; उनके आगे सर्वव्यापी चित्त; उसके आगे सर्व-साधारण अहन्ता अर्थात् अहङ्कार; उसके आगे सर्वात्मिका बुद्धि। यह सब प्रकृति के भीतर है; यह सब प्रकृति का प्रसार है; यह सब प्रकृति का प्रतिबिम्ब है। इसमें से कुछ भी उसके बाहर नहीं। हम लोगों में से प्रत्येक मनुष्य इस अद्भुत प्रकृति का, इस अद्भुत सृष्टि का, एक अंश है। उत्पन्न होकर यह सृष्टि अनन्त भागों में बँट जाती है। इसी लिए मनुष्य, पशु, पक्षी,

नदी, पर्वत आदि, स्थावर जङ्गम दोनों विभागों, के अनन्त रूप देखे जाते हैं। हमने अपना स्थूल शरीर अपने पूर्वजों से पाया है; इसलिए हममें जो सज्ञानता है वह हमारे पूर्वजों की सज्ञानता ही का अंश है। इस सज्ञानता के भाग-विभाग होते ही जाते हैं। हमारी शारीरिक और मानसिक सम्पत्ति पैतृक सम्पत्ति है। हमारा शरीर हमारे पूर्वजों के शरीर ही का अंश है, इसलिए हमारी सज्ञानता और अहन्ता आदि की सारी सामग्री भी हमारे पिता, पितामह, आदि की सज्ञानता और अहन्ता ही का अंश है। यह अंश बराबर, इसी प्रकार, चला जायगा। अपने पूर्वजों से सज्ञानता का अत्यल्प अंश पाकर हम प्रकृति की सर्वव्यापी सज्ञानता से उसकी वृद्धि कर सकते हैं। प्रकृति में महत्, बुद्धि, अहन्ता आदि अखण्ड भाण्डार भरा पड़ा है। उससे हम यथाशक्ति अपनी आवश्यकतायें पूरी कर सकते हैं। इस सृष्टि में बहुत बड़ी मानसिक शक्ति एकत्र है। उससे हम सर्वदा थोड़ी बहुत लेते रहते हैं। परन्तु बात यह है कि इन शक्तियों का बीज पूर्वजों से मिलना चाहिए। बिना माता-पिता से इनका बीज पाये हम इन शक्तियों की वृद्धि, प्राकृतिक शक्तियों की सहायता से, नहीं कर सकते। परम्परा से जो नियम चला आता है उसके अनुसार माता-पिता के द्वारा आत्मा को अपेक्षित सामग्री दे दी जाती है। इस सामग्री से वह मनुष्य की मनमानी रचना कर सकता है।

इस रीति में, इस प्रणाली में, कितने ही विकास, कितने ही सङ्कोच और कितने ही फेर-फार होते हैं। जो कुछ हम देखते हैं सब प्रकृति के विकास से उत्पन्न हुआ है। उसमें अनेक फेर-फार होकर, अन्त में, वह सब फिर प्रकृति ही को लौट जायगा। वह उसी में लीन हो जायगा।

[मई १९०५

